समर्पण

सामाजिक नाटक

रचियता

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

१६५०

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली

प्रकाशकः—
राम लाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
दिल्ली

मूल्य
एक रुपया बारह आने

मुद्रकः
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

कस्मै देवाय ?

(प्राक्कथन)

सन् १९२९-३० मे मैंने एक छोटा-सा नाटक लिखा था—'प्रताप-प्रतिज्ञा'। इसलिए लिखा था कि लिखना अनिवार्य हो गया था। मेरे जन्मस्थान मुरार, जो बृहत्तर ग्वालियर का एक उपनगर है, के कुछ विद्यार्थियों ने, जिनम अनेक संभवतः बालचर थे, मुझसे अधिकार-पूर्ण आग्रह किया कि मैं उनके अभिनय के लिए प्रतापसिंह के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई एक नाटक चुन दूँ। उन्होंने मुझपर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए "नाटक देशप्रेम और राष्ट्रीयता से पूर्ण हो, छोटा-सा हो, उसमे स्त्री-पात्र न हों" आदि-आदि। उनके प्रतिबन्धों का निर्वाह करते हुए,जब कई पुस्तकालयों की ख़ाक छानने पर भी, मैं उनके योग्य कोई नाटक न पा सका, तब उन्होंने छात्र-सुलभ सरलता-से अचानक हठ की कि मैं ही उनके लिए वैसा एक नाटक लिख दूँ। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। उस दिन मैंने अचानक विवश होकर अपने अन्दर नाटककार की प्रथम स्फूर्ति अनुभव की। शीघ्र ही 'प्रताप-प्रतिज्ञा'—नाटक लिख डाला गया। अपने प्रारम्भिक जीवन मे अपने उस जन्मस्थान के कुछ छोटे-छोटे अनौपचारिक रङ्गमंचों-पर शौक़िया अभिनेता के रूप मे दो-एक बार अवतरित होने का मुझे संयोगवश जो अवसर प्राप्त हो चुका था, उसने भी अपने उस नाटक-के निर्माण मे मेरी कुछ व्यावहारिक सहायता की। एक विनम्र कवि के रूप मे तो मैं अपने-आपको सन् १९२२ से जानता आ रहा था और तभी से मेरी कविताएँ सामयिकपत्रो मे प्रकाशित भी होती आ रही थीं, पर, एक नए नाटककार के रूप मे मैंने अपने-आपको 'प्रताप-प्रतिज्ञा' लिखने के बाद, सन् १९२९ ही में, प्रथम बार, जाना।

'प्रताप-प्रतिज्ञा' के स्थानीय रङ्गमंच पर तत्काल सफलतापूर्वक अभिनीत होने से प्रोत्साहित होकर मैंने उसका एक दृश्य एक मासिक-पत्रिका में प्रकाशित कराया। उससे उसका परिचय पाकर उसके प्रकाशक ने तत्काल उसे प्रकाशनार्थ ले लिया। प्रकाशन के बाद मेरे उस छोटे-से और प्रथम नाटक को जो देशव्यापी लोकप्रियता प्राप्त हुई, उसने मुझे आश्चर्य चकित कर दिया, हालाँकि मुझे उसके प्रकाशन और अभिनय से अर्थ-लाभ नगण्य ही हुआ। उसकी प्रतियाँ बहुत बड़ी संख्या में बिकीं और स्थान-स्थान पर अनेक बार उसके अभिनय किए गए। यह एक संयोग ही समझा जा सकता है कि उस एक ही नाटक के बल पर मैं पूरे बीस वर्षों से अब तक एक नाटककार कहलाता आ रहा हूँ, हालाँकि मुझे स्वयं स्वभावतः अपने उस प्रारम्भिक नाटक से यथेष्ट सन्तोष नहीं है और उसकी उस सफलता को मैंने कभी वास्तविक सफलता नहीं माना।

इन पिछले बीस वर्षों में अनेक बार अनेक प्रकाशकों द्वारा प्रबल आग्रह किए जाने पर भी जो मैं अब तक दूसरा नाटक नहीं लिख पाया, उसके अनेक कारण रहे हैं, व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक।

अपने प्रमाद, अस्वास्थ्य, विविध सार्वजनिक कार्यों, कौटुम्बिक झंझटों तथा अन्य व्यस्तताओं को मैं अधिक दोष इसलिए नहीं दे सकता कि उनके बावजूद भी मैं बहुत-सी कविताएँ तथा निबन्ध तो लिख ही सका हूँ और इन्हीं बीस वर्षों मे मेरे तीन कविता-संग्रह तथा एक निबन्धसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। तब, केवल नाटक ही न लिखने-का क्या कारण था, जबकि प्रकाशकों की ओर से नाटक ही की माँग सबसे ज़्यादा थी ?

बात यह थी कि मैं नाटक-सम्बन्धी परिस्थितियों से क्षुब्ध था। वास्तविक अभीष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अभाव में, नाटक लिखने का प्रस्ताव सामने आते ही हर बार मेरा मन एक गम्भीर प्रश्नचिह्नांकित 'कस्मै देवाय' ('किस के लिए') से आवृत हो जाता था, अनेक

समस्याएँ मेरे चिन्तन और संकल्पों को धूमिल बना देती थीं।

मेरी राय मे, नाटक की प्रधान सार्थकता इसमें है कि वह स्त्री और पुरुष दोनो प्रकार के पात्रो की दृष्टि से पूर्ण नाटक हो और उसका सर्वाधिक और सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसका विधिवत् अभिनय हो। नाटक केवल पढने ही के लिए तो नहीं होता। समीचीन और सुव्यवस्थित अभिनयों के उचित प्रबन्ध का अभाव मेरे सामने एक बहुत बडी समस्या थी।

मैं अपने शैशव से लेकर प्रौढावस्था के प्रारम्भ तक अन्य प्रान्तो-के ग़ैरपेशेवर कलाकारा तक को मराठी, बँगला, गुजराती आदि भाषाओं-के अच्छे-अच्छे नाटक अनौपचारिक रङ्गमंचो पर सफलता और स्वाभाविकतापूर्वक अभिनीत करते अनेक वार देख चुका हूँ। मैं यह भी कल्पना करता हूँ कि उक्त भषाओ की वह कला नगर-नगर और ग्राम-ग्राम की जनता मे प्रवेश पाती जा रही होगी। उनकी कला की एक विशेषता मैंने यह भी देखी कि सुसंस्कृत और सम्मानित परिवारो के तरुण-तरुणी साथ-साथ रंगमंच पर स्वाभाविकता के साथ अवतरित होते हैं और अपने इस कलाप्रदर्शन के कारण समाज में गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। वे अभिनय के लिए जिन नाटकों का चुनाव करते हैं, वे उनकी भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारो के लिखे हुए होते हैं। वे अपनी निरन्तर साधना से उच्चकोटि के साहित्यिक नाटको-के अनुकूल लोकरुचि को बनाने का यत्न करते हैं, नकि लोकरुचि के नाम पर उनका अंग-भंग करने की चेष्टा।

कोटि-कोटि मानवो की मातृभाषा, सारे राष्ट्र की स्वीकृत राष्ट्र-भाषा तथा अनेक प्रान्तों की राज्यभाषा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्य-कारों को मैंने नाटककारों के रूप मे नाट्य-मंच पर यथेष्ट आदृत होते नहीं देखा, भले ही उनमे से अनेक के द्वारा बहुसंख्यक नाटकों का निर्माण हो चुका हो।

हिन्दी का कोई सव्यवस्थित, उपयक्त और परिपूर्ण राष्ट्रीय-रंगमंच

भी मुझे कहीं दिखाई नहीं दिया । अनौपचारिक रंगमंचो की स्थिति भी संतोषजनक नज़र नहीं आती थी और नाटककार के रूप मे साहित्यकार का उचित स्वागत होते तो प्राय. कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता था ।

पेशेवर रंगमंच का प्रश्न तो दूर ही रहा, अपने को सामाजिक तथा साहित्यिक सेवा की व्रती कहने वाली अनेक संस्थाओं के अनौपचारिक रंगमंचों पर भी हिन्दी के साहित्यिक मापदण्ड की जो अवहेलना की जाती थी, वह भीषण थी ।

वास्तव में तो सिनेमा के आविष्कार का प्रभाव नाट्यमंच पर पड़ना उसी प्रकार अनावश्यक था, जिस प्रकार फ़ोटोग्राफ़ी का कलापूर्ण चित्रांकन पर, पर, वह प्रभाव भी पड ही रहा था और हिन्दी नाट्य-मंच के निर्माण के अंकुर, पौधे बनने के पहले ही, सिनेमा के प्रबल तूफ़ानमे पड़कर नष्ट होते नज़र आ रहे थे ।

सिनेमा-व्यवसाय की अधिकांश आय के आधार हैं साधारण मूल्य के टिकिट ख़रीदने वाले दर्शक और ऐसे दर्शको की सर्वाधिक संख्या इस देश मे हिन्दी-भाषी तथा हिन्दी समझने वाली है । सिनेमा-व्यवसाय में जिन लोगो का धन लगा हुआ है, उनमे काफी महत्त्वपूर्ण संख्या उन लोगों की है, जो या तो हिन्दी या उसकी किसी प्रादेशिक उपभाषा के बोलने वाले हैं या हिन्दी समझ लेते हैं । देश की सारी प्रांतीय भाषाओं में मिलाकर जितनी फ़िल्मों का निर्माण होता है, संभवत: उन सब की सम्मिलित संख्या से भी बड़ी संख्या मे हिन्दी-भाषा की फ़िल्मे बनाई जाती हैं । सवाक्चित्रपट-व्यवसाय मे लाभ-की दृष्टि से हिन्दी-भाषा की यह दशा होते हुए भी हिन्दी के चोटी के साहित्यकारों को इस व्यवसाय की दिशा से कितनी आय हो रही है और कितना सम्मान प्राप्त हो रहा है, इसकी एक सर्वविदित करुण कहानी है ।

इस स्थिति का परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी के अधिकतर

साधारण स्तर के साहित्यकार ही संभवतः पलायनवाद की मनःस्थिति-से पीडित होकर सिनेमा-क्षेत्र में जाते हैं और उस क्षेत्र मे और भी अधिक उपेक्षित सिद्ध होकर वापस लौट आते है। हिन्दी के महत्तम साहित्यिक हिमाचलो से तो सिनेमा की गटर-गङ्गा अभी तक प्रायः कोई संबंध ही स्थापित नहीं कर पाई है और इस दिशा मे सफलता प्राप्त करने के लिए किसी अभिनव भगीरथ की आवश्यकता है।

अनेक अन्य प्रान्तीय भाषाओं के सवाक्-चलचित्रपट-निर्माता जिस श्रद्धा और सम्मान के साथ अपनी भाषाओ के चोटी के साहित्यकारों-की रचनाओ का उपयोग करते हैं और उन रचनाओ के उच्च साहित्यिक स्तर को फ़िल्मो के रूप मे भी प्राय. क़ायम रखते हैं, उस श्रद्धा और सम्मान का हिन्दी के सवाक्-चित्रपट-निर्माताओं मे हिन्दी के महान् साहित्यकारो के प्रति प्रायः अभाव पाया जाता है।

सामान्य रचनाओं को छोडकर जब कोई फ़िल्म-निर्माता बँगला, मराठी, गुजराती आदि के चोटी के साहित्यकारों की उच्च कोटि की रचनाओ को आधार बनाकर प्रथम श्रेणी की फ़िल्में बनाता है, तब उन्हें देखने उन भाषाओं के बोलने वाले दर्शकों का विशाल जनसमुद्र उमड आता है। उन भाषाओं के बोलने वाले दर्शको की यही मनोवृत्ति उनके महान् साहित्यकारों को फ़िल्म-निर्माताओ से प्रचुर सम्मान तथा धन दिलाती है, जबकि हिन्दी-भाषी दर्शकों द्वारा अपनी भाषा के महान् साहित्यकारो के प्रति प्रदर्शित की जाने वाली उपेक्षा-वृत्ति ही इस क्षेत्र मे उनकी अवहेलना का वास्तविक कारण है।

यह तो हुई हिन्दी के चोटी के साहित्यकारों की बात। मध्यम श्रेणी के लेखकों की तो सिनेमा-क्षेत्र मे और भी दुर्दशा है।

नाटको के व्यापकीकरण, आधुनिक -करण तथा वैज्ञानिकीकरण के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र—सिनेमाजगत्—मे साहित्यसेवियों की इस दुर्दशा को देखकर भी नाटक लिखने का उत्साह कुछ मन्द होना स्वाभाविक ही हो सकता है, हालाँकि यह भी एक विचारणीय विषय

है कि सिनेमा का वैभव विराट् होते हुए भी उसकी उपयोगिता आज सीमित है।

यदि कोटि-कोटि मानवों के इस नवजात महान् भारतीय जनतंत्र-को सफल बनना है, तो इसकी 'निर्मात्री समूची जनता को शिक्षित बनना होगा, उसे इस योग्य बनना होगा कि रोटी, कपड़े, शिक्षा, मकान आदि की घोर चिन्ता से मुक्त होकर वह अपना अधिक से अधिक सांस्कृतिक विकास कर सके। जनता के सांस्कृतिक विकास के लिए सुरुचिपूर्ण अभिनय-प्रदर्शन को गाँव गाँव पहुँचना होगा और प्रत्येक स्थान के अपने प्रतिभाशाली अभिनेताओं को उसमे भाग लेना होगा। स्थायी और अच्छे सिनेमा-भवनों का गाँव-गाँव पहुँच सकना अभी अनेक वर्षों तक अत्यधिक व्ययसाध्य होगा। यदि प्रयत्न किया जाय, तो इस संक्रमण-काल मे नाट्य-समितियाँ तो हर जगह स्थापित की जा सकती हैं और उनके द्वारा नाटक तो गाँव-गाँव पहुँचकर अपनी जड़ें मज़बूत कर ही ले सकते हैं, जिससे भविष्य में स्थायी सिनेमा-भवनों के भी गाँव-गाँव में पहुँच जाने पर भी जनता के प्रत्यक्ष एवं सजीव आत्मप्रकाशन तथा निकटस्थ कलाभिव्यक्ति के स्वाभाविक सांस्कृतिक उपकरण के रूप मे नाटक-प्रदर्शन की गाँव-गाँव में प्रतिष्ठा बनी ही रहे। उसी प्रकार, जिस प्रकार फ़ोटोग्राफ़ों और शहर के मिलावट वाले घी के घर-घर में पहुँच जाने पर भी उच्च कोटि के कलाकारों के हाथ से बनाए हुए कलापूर्ण चित्रों और गाँव के शुद्ध घी की प्रतिष्ठा अभी तक सर्वत्र बनी ही हुई है।

किन्तु, प्रायः किसी भी दिशा में हिन्दी-नाटकों के, पेशेवर या ग़ैरपेशेवर कलाकारों द्वारा, नगर-नगर और गाँव-गाँव मे पहुँचाए जाने-की कोई उल्लेखनीय चेष्टा न होते देख नाटकों के निर्माण में उत्साह-का अभाव हो जाना स्वाभाविक ही समझा जा सकता है।

जनता स्वयं इसका प्रयत्न करे, इसके लिए भी एक उचित उच्चता-सांस्कृतिक धरातल की आवश्यकता अनुभव होती है।

प्रतिष्ठित कहे जाने वाले अनेक व्यक्ति स्वयं तो मनोरंजन के लिए ऐसे नाटकों को भी देखने चले जाते हैं, जिनमें स्त्री-पुरुषों का चित्रण करते समय संयम से काम नहीं लिया जाता, किम्बहुना, वे कभी-कभी ऐसे नाटकों मे अभिनय करना भी स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु, स्वयं अपने घर की महिलाओं को ऐसे नाटक में भी अभिनय नहीं करने देते, जिनमें स्त्री-पुरुषों का चित्रण सुरुचि, संयम तथा सभ्यता की सीमा-के अन्दर रहते हुए ही किया गया हो।

महिलाओं को पुरुषों के साथ रंगमंच पर न आने देने की अधिकांश परिवारों की इस दुर्बलता का इलाज यह नहीं है कि नाटको मे स्त्री-पात्रों का उसी प्रकार अभाव रखा जाय,जिस प्रकार विद्यार्थियो के आग्रह पर मुझे अपने प्राथमिक नाटक 'प्रतापप्रतिज्ञा' में रखना पड़ा था, अथवा केवल स्त्री-पात्रों ही से युक्त नाटकों की रचना की जाय। यदि नाटक जीवन का पूर्ण और वास्तविक चित्रण है, तो उसमे पुरुष और स्त्री दोनो प्रकार के पात्र होना भी स्वाभाविक है।

स्त्री-पात्रों का अभिनय पुरुषों या बालकों से अथवा पुरुष-पात्रों-का अभिनय स्त्रियों से कराना तो अत्यन्त अस्वाभाविक और कुरुचि-पूर्ण है। यदि भली महिलाएँ पुरुषों के साथ रंगमंच पर आने में निरन्तर सदैव संकोच ही करती रहें, तो, उचित यही होगा कि सांस्कृतिक नाटकों का निर्माण ही बन्द कर दिया जाय, क्योंकि न तो सिनेमा को और न पेशेवर नाटकमंडलियों की महिलाओं को गाँव-गाँव और नगर-नगर ले जाना संभव है। यह तो तभी हो सकता है, जब नाटकों के अभिनय के लिए प्रत्येक स्थान पर जनता की नाट्यसंस्थाएँ स्थापित की जायँ और उनमें अभिनय करने के लिए सुसंस्कृत तथा चारित्र्यवान् स्त्री पुरुष मिल सकें। उन्हीं के आधार पर नाटक-रचना-की स्फूर्ति के सूत्र अविच्छिन्न रखे जा सकते हैं। उन्हींका जब अभाव नज़र आ रहा हो, तब नाटककार अपने उत्साह को कैसे क़ायम रख सकता है? इस विषय में नाटककार की उलझन उस समय और भी

बढ़ जाती है, जब वह यह अनुभव करता है कि नाटक-रचना के साथ-साथ रंगमंचों का भी आयोजन कर सकना उसके वश की बात नहीं है। यह तो देश के प्रभावशाली जननेताओं तथा कर्मठ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ही का काम है; मुट्ठी-भर विकृत मस्तिष्क एवं अर्थलोलुप व्यवसायियो का नही। खेद का विषय है कि जन-नेताओं के उपर्युक्त वर्ग मे नाटक-प्रदर्शन की ओर सब से अधिक उदासीनता पाई जाती है, यह दूसरी बात है कि कभी-कभी ये लोग नाटक के प्रति कोरी शाब्दिक सहानुभूति प्रकट करते पाए जायँ। इसका कारण यह है कि ये कभी-कभी मन-ही-मन सोचते हैं कि क्या ही अच्छा हो कि कोई दूसरी ही रहस्यमय शक्ति एक दिन अचानक उत्पन्न होकर रातों-रात गाँव-गाँव और नगर-नगर मे जनता की ऐसी नाट्य-समितियाँ स्थापित कर दे, जो इन लोगों के राजनीतिक प्रचार का हथियार बन सकें। भारत मे साहित्य और संस्कृति के प्रति जन-नेताओ के इस वर्ग मे वह स्वाभाविक सहानुभूति और स्नेह नही पाया जाता, जो संसार के अन्य देशों के इसी वर्ग के व्यक्तियों में विद्यमान है।

जो थोड़ी-बहुत साहित्यिक और सांस्कृतिक सस्थाएँ हिन्दी-भाषी प्रदेशों मे हैं, उनमें अधिकांश साधनहीन हैं। जिनके पास कुछ साधन हैं, वे उसी तरह दलबन्दी के फेर मे पडी हुई हैं, जिस तरह अनेक राजनीतिक संस्थाएँ। ऐसी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओ और उनके नेताओं से यह आशा नहीं कीजा सकती कि वे विशुद्ध मिशनरी-भावना-से गाँव-गाँव और नगर-नगर मे नाट्य-समितियाँ स्थापित करने के रचनात्मक कार्य मे अपने जीवन के कुछ वर्ष लगा सकेंगे।

यदि नाटककार मे नियमित रूप से उचित परिमाण मे उच्च कोटि-के नाटकों का निर्माण कराना जनता को अभीष्ट हो, तो उसे पर्याप्त उच्च कोटि की नाट्यसमितियाँ स्थापित कराने के साथ-साथ नाटककार-को भी अपने प्रोत्साहन से इतना साधनसम्पन्न तो बनाना ही होगा कि वह अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के अलावा मानव-जीवन,

समाज, प्रकृति, इतिहास आदि का सम्यक् अध्ययन एवं निरीक्षण करता रह सके तथा उसे पर्याप्त पर्यटन के साथ-साथ समकालीन साहित्य, नाटकों तथा सिनेमा-फ़िल्मों के आलोचनात्मक पर्यवेक्षण का यथेष्ट अवसर भी मिलता रहे। यदि इतने भी साधन नाटककार के लिए सुलभ न हुए, तो वह क्या ख़ाक नाटक-रचना कर सकेगा?

हिन्दी-भाषी प्रदेशों की अधिकांश जनता अशिक्षित है। जो थोड़े-से व्यक्ति कुछ पढ़े-लिखे समझे जाते हैं, उनमें भी अधिकांश अर्धशिक्षित हैं। उन अर्धशिक्षितों में भी अँगरेज़ी आदि अन्य भाषाओं के प्रति जो मोह पाया जाता है, वह हिन्दी के लिए नज़र नहीं आता। ऐसे लोग धन की दृष्टि से ग़रीब हैं और वे धन की दृष्टि से जितने ग़रीब हैं, मन-की दृष्टि से उससे भी अधिक ग़रीब हैं। उनके कौटुम्बिक बजट में हर-एक चीज़ का समावेश हो सकता है, केवल पुस्तकों को छोड़कर। और पुस्तकों में भी वे उच्च कोटि की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पुस्तकें तो भूलकर भी नहीं ख़रीदना चाहते।

ऐसी दशा में, यदि ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर-व्यापी नाट्यसमितियों का अस्तित्व न हो और वे उच्च कोटि के नाटकों के प्रचार द्वारा जनता के सांस्कृतिक स्तर को उन्नत बनाने का बीड़ा न उठाएँ, तो केवल घर बैठकर हीन स्तर के नाटक पढ़ने वाले थोड़े-से पाठकों के भरोसे कोई नाटककार, नाटककार के रूप में, कैसे जीवित रह सकता है और यदि नाटककार बनकर जीवित रहना संभव नहीं, तो नाटक-रचना को कोई अपने जीवन का प्रधान कार्य कैसे बना सकता है? यह तो सर्वविदित बात है कि आज का युग विशेषज्ञों का युग है। बिना अनवरत साधना के, राह चलते, चाहे जब चाहे जिस काम को कर गुज़रने वालों के काम का आज कोई महत्त्व नहीं समझा जाता। नाटककार भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता। उसके नाटक तब तक पूर्णतया जीवनस्पर्शी नहीं हो सकते, जब तक वह उनके निर्माण में इस हद तक तन्मयता अनुभव न करे कि उसे अपने जीवन-

का एक प्रधान कार्य बना ले ।

केवल पाठकों के बल पर जीवित रहने वाले नाटककार के जीवन-की भी एक बहुत बड़ी समस्या प्रकाशक की समस्या है। हिन्दी नाटकों-को जो थोड़े-बहुत पाठक प्राप्त हैं, उनकी रुचि भी अभी तक अच्छी तरह निर्धारित नहीं हो पाई है। अतः, नाटको के विषय में प्रकाशकों-की रुचि भी अभी कुछ अनिश्चित-सी ही है। उसके सहारे, अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करके निश्चित क़दमों से आगे बढने का इच्छुक नाटककार, अपनी जीवन-यात्रा नहीं चला सकता। बाज़ार की अनिश्चितता के साथ-साथ अपनी नीयत और ईमानदारी को भी डाँवाँडोल बना लेने के कारण अनेक प्रकाशक लेखकों को अग्राह्य हो उठते हैं।

ऐसी प्रतिकूल तथा निराशापूर्ण स्थिति मे यदि किसी नाटककार को जमकर तथा व्यवस्थित रूप मे नाटकरचना करने की स्फूर्ति न हो, तो उसमे आश्चर्य की कोई बात न समझी जानी चाहिए, यों, चलते-फिरते, अन्य कार्यों के बीच में से समय निकालकर, शौक़िया रूप मे, वह कुछ फुटकर कविताएँ या निबन्ध भले ही लिख ले।

ऐसी दशा मे भी यदि आज कोई नाटककार लम्बे समय तक मौन रहने के बाद नाटकरचना का पुनरारम्भ करना चाहे, तो वह केवल आशा की उस एक किरण ही के सहारे ऐसा कर सकता है, जो हाल-में इस देश के एक नवीन स्वतन्त्र जनतन्त्र घोषित किए जाने के फल-स्वरूप क्षितिज पर दृष्टिगोचर होने लगी है। केवल यह घोषणा भी स्फूर्तिप्रद न होती, यदि अगले एक वर्ष के अन्दर ही जनता के उत्साह में अदम्य ऊर्मि उठा सकने वाले देशव्यापी निर्वाचनों के किए जाने की निश्चित घोषणा न की गई होती। इससे जनता मे पर्याप्त जाग्रति उत्पन्न होना अवश्यंभावी हो गया है।

स्वतन्त्र भारतीय जनतन्त्र की जनता की कला-चेतना भी अब और अधिक समय तक प्रसुप्त नहीं रह सकती। यदि अपने को सार्वजनिक

राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों की संस्थाओं के नेता कहने वाले व्यक्ति इस क्षेत्र में निष्क्रिय ही बने रहेंगे, तो जनता उन्हें छोड़कर आगे बढ़ेगी। वह स्वयं आत्मनिर्भर होकर अनतिदूर भविष्य में नगर नगर तथा ग्राम-ग्राम में अपने साहित्य-समाज, संस्कृति-संघ, नाट्य-समितियाँ तथा कला मंडल स्थापित करेगी और उनके द्वारा जनता की अन्य कलाप्रवृत्तियों के साथ-साथ नाटक-अभिनय देखने और करने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित करेगी। उसी-के साथ-साथ जनता में उच्च कोटि के नाटक पढ़ने की प्रवृत्ति भी वेग-से बढ़े बिना नहीं रहेगी। वे दोनों प्रवृत्तियाँ मिलकर शीघ्र ही ऐसा सुसंस्कृत वातावरण उत्पन्न करेंगी कि जनता की उन्नति चाहने वाले नाटककार को जनता को पतन के गर्त में गिराकर उससे मनोरंजन के नाम पर कुत्सित प्रवंचनापूर्वक धन छीनने वाले सिनेमा-फ़िल्म-निर्माताओं या बेईमान प्रकाशकों के आगे आत्म-समर्पण न करना पड़ेगा। नाटकों का स्तर गिराने के बदले जनता का स्तर उठाने तथा उच्च कोटि के नाटकों के प्रचार का व्रत लेने वाली नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में व्याप्त नाट्य-समितियाँ तथा ईमानदार एवं सुरुचिसम्पन्न प्रकाशक, सुसंस्कृत जनता के समर्थन के सहारे, आदर्शोन्मुख एवं बौद्धिकता के समर्थक नाटककारों के सम्मान तथा सुविधापूर्वक जीने तथा उत्तरोत्तर उत्साह के साथ उत्तमोत्तम नाटक-निर्माण करते रहने-के साधन अनतिदूर भविष्य ही में प्रस्तुत कर सकेंगे।

आज स्थिति कुछ ऐसी हो गई है कि, पिछले तमाम कटु अनुभवों-के बावजूद, केवल इसी आशा और विश्वास के सहारे, नाटककार, अपने लक्ष्य-पथ को न छोड़ते हुए, नाटक-निर्माण का कार्य पुनरारंभ करके उसे जारी रखने का संकल्प कर सकता है।

मैं पाठकों से यह छिपाना नहीं चाहता कि निकट भविष्य के इसी आशापूर्ण सुखस्वप्न ने मुझे भी प्रेरणा दी है, पिछले बीस वर्षों-के निराशापूर्ण वातावरण के कुहरे को हटाकर मैंने भी इसीके

आधार पर नाटकनिर्माण का पुनरारंभ उत्साह के साथ किया है और मैं इसे आगे भी जारी रखना चाहता हूँ। यद्यपि भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी अभी तक जनता के जीवन मे सुखपूर्ण परिवर्तन नही हुआ है, फिर भी एक विनम्र किन्तु स्वप्न-दर्शी कवि और नाटककार के नाते कुछ आगे तक देख पाना मेरे लिए अस्वाभाविक नही है और मैं यह स्पष्ट देख पा रहा हूँ कि वह दिन अब दूर नही है कि बीस वर्षों तक विकृत, निराशापूर्ण और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण नाटक-रचना की दिशा मे मौन रहने वाली मेरी लेखनी इस दिशा मे फिर स्वाभाविक गति से चल निकले और चलती रहे।

महापुरुष उसे कहते हैं, जो प्रतिकूल एवं निराशाजनक परिस्थितियों से ज़रा भी कुंठित न हो। मै इसे स्वीकार करता हूँ कि मैं सामान्य मानव हूँ, अतः, मैं ऐसी परिस्थितियों से कुंठित होकर नाटक-रचना की ओर से बीस वर्षों तक विरत रहा। यद्यपि पिछले बीस वर्षों का विनम्र एवं मौन चिन्तन, अध्ययन-अनुभव मेरे साथ है, फिर भी, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यदि "किसके लिए लिखूँ (कस्मै देवाय) ?" के प्रश्न से मेरा मन अभिभूत न हो गया होता और यदि मैंने पिछले बीस वर्षों मे लगातार नाटक-रचना की होती, तो शायद उसका मेरे इस नाटक की कोटि पर उन्नायकतर प्रभाव पड़ा होता। पर, मेरी मनःस्थिति के कुंठित होने का औचित्य मेरी उपर्युक्त पंक्तियों मे पाठक समझ ही गए होगे और मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस विनम्र पुनरारंभ को वे कृपया प्रोत्साहित करेंगे। यदि उनका उचित प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तो मैं आशा करता हूँ कि, मैं नियमित रूप से नाटकरचना के क्षेत्र मे कुछ कार्य करता रह सकूँगा।

ग्वालियर,
कार्तिकी पौर्णिमा,
सं० २००७ वि०

—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

नाटककार के जीवन पर एक दृष्टि

जन्मस्थान–श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का जन्म मुरार (**ग्वालियर**) मे हुआ ।

जन्मतिथि–कार्तिकी पौर्णिमा सम्वत् १९६४ वि०

शिक्षा–मुरार हाई स्कूल मे प्रारम्भिक, तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, अकोला (**बरार**) मे मैट्रिक तक, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना से मैट्रिक्युलेशन परीक्षा, उसके बाद साहित्य और समाज-विज्ञान की उच्च शिक्षा काशी-विद्यापीठ, बनारस के राष्ट्रीय कालेज मे । हिन्दी और अँगरेजी के अतिरिक्त सस्कृत, उर्दू, मराठी, बँगला और गुजराती भाषा का भी ज्ञान है ।

पुस्तकें–आपकी रचनाओ मे 'प्रताप-प्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण' (**नाटक**), 'जीवन-सगीत', 'नवयुग के गान' तथा 'बलिपथ के गीत' (**कविता-संग्रह**) और 'चिन्तनकण' (**निबन्धसंग्रह**) प्रकाशित हो चुके है तथा 'भूमि की अनुभूति'–नामक नया कविता-सग्रह तैयार हो रहा है ।

कार्य–विश्वभारती-शान्तिनिकेतन (**बंगाल**) तथा म० आश्रम, वर्धा (**मध्यप्रदेश**) मे अध्यापक तथा प्रयाग और अजमेर मे साहित्यसेवी तथा राष्ट्रकर्मी के रूप मे रहे । लाहौर की मासिक-पत्रिका 'भारती' तथा ग्वालियर के अर्ध-साप्ताहिक पत्र 'जीवन' के सम्पादक रहे । ग्वालियर-स्टेट-कॉग्रेस के प्रधानमत्री तथा मध्यभारत प्रांतीय कॉग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य रहे । सन् १९४२ के आन्दोलन में तथा बाद मे भी जेलो मे रहे । कॉग्रेस द्वारा शासन ग्रहण किए जाने पर मिनिस्टर पद स्वीकार करने का अनुरोध किए जाने पर उसे अस्वीकार कर चुके हैं । मध्यभारत समाजवादी पार्टी के सर्वसम्मति से दो बार लगातार प्रान्तीय प्रमुख चुने गए थे । बृहत्तर ग्वालियर साहित्यकार-सघ तथा पत्रकारसघ के अध्यक्ष भी रहे ।

पिछले दिनो अस्वास्थ्य,सार्वजनिक कार्यो तथा अन्य अधिक व्यस्तताओ-के कारण साहित्य-निर्माण मे पर्याप्त समय न लगा सके । किन्तु, अब पुन साहित्यक्षेत्र मे भी अधिक कार्य करने का निश्चय किया है '

आजकल लश्कर (**ग्वालियर**) मे रहकर अपने समय का एक काफी बड़ा अश ग्रथ-लेखन तथा स्वतत्र पत्रकार के कार्य मे लगा रहे हैं। देश-के अनेक प्रतिष्ठित हिन्दी, अँगरेजी, गुजराती, मराठी, बगला आदि भाषाओ के दैनिक पत्रो के प्रतिनिधि है। अनेक ग्रथो के निर्माण की योजना भी उनके सामने है। आजकल नियमित रूप से साहित्यनिर्माण कर रहे है।

—-प्रकाशक

स्वर्गीय सुहृद्वर हास्यावतार

श्री किरणविहारी दिनेश की

स्मृति मे

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

नवीनचन्द्र—युवक समाजसेवक
शान्तिस्वरूप—नागरिक, इला के पिता
प्रकाशचन्द्र—शान्तिस्वरूप का पुत्र, बालक
उपेन्द्रनाथ—नवीनचन्द्र का मित्र, सहयोगी
गजेन्द्रसिंह—विनोदी युवक, समाजसेवक
रामलाल—हरिजनों का चौधरी
छोटेलाल—रामलाल का हरिजन मित्र
बिहारी—रामलाल का पुत्र, बालक
विनोदकुमार—आधुनिक युवक
पोस्टमैन

स्त्री-पात्र

इलादेवी—नवयुवती समाजसेविका
सुषमादेवी—इलादेवी की सहेली
उमादेवी—इलादेवी की माता
रम्भा—इलादेवी के घर की मिसराइन
माधवीदेवी—सुशिक्षित आधुनिक युवती
मायादेवी—गजेन्द्रसिंह की सहयोगिनी, समाजसेविका
जमना—रामलाल की पत्नी
कुछ बालिकाएँ—जननृत्य तथा जनगीत के लिए

पहला अंक

पहला दृश्य

[आसमानी सोने की मध्याह्नोत्तर छाया। उसमें उगने का तेज नहीं, धीरे-धीरे ढलने की शिथिलता। हलके रंगों के चित्र की तरह विरल पौधों की एक छोटी-सी बाग़ीची। बग़ीची से लगा हुआ बरामदा। बरामदे के एक कोने की खिडकीदार कोठरी मे टेलीफ़ोन। बाग़ीची मे चार, बेंत के, पीले रँगे हुए, कुर्सीनुमा मूढ़े। दो पर दो लड़कियाँ; इलादेवी और सुषमादेवी। इला की साड़ी खादी की, सुषमा की रेशमी। अंचल कन्धों पर। खुले सिर। इला का जूडा साधारण; पीछे बँधा हुआ। सुषमा की दो चोटियाँ गुथी हुई दोनों कन्धों पर से नीचे की ओर पड़ी हुई। दोनों के पैरों मे चप्पलें।]

सुषमा

जीवन की सबसे गभीर समस्या, विवाह का प्रश्न! इसके समाधान-पर जीवन का भविष्य निर्भर है। तुम इसका चाहे जितने ज़ोर से विरोध करो, मै नही मान सकती। ऊँचे स्वर से सत्य को नही ढका जा सकता।

इला

देखो भई सुषमादेवी! तुम भी यदि पागलो की दुनिया में सम्मिलित होना चाहती हो, तो खुशी से हो जाओ। 'समस्या' कहकर आँखे चढ़ाने और सिर हिलाने ही से तो किसी भ्रम को समस्या नही बनाया जा सकता। जिसे देखो, वही 'ब्याह, ब्याह !' की रट लगाए हुए है। आखिर, लडकिया दुनियाँ को इतनी भारी क्यो पड जाती है? लड-कियाँ क्या जानवरो से भी गई-बीती है कि उनके पीछे लोग दिन-रात हाथ धोकर पडे रहते है कि—'ब्याह करो, ब्याह करो, ब्याह करो!'

ससार मे असख्य पशु-पक्षी स्वच्छता और स्वतन्त्रता से जीवन बिताते है, उनसे तो कोई विवाह के बँधन मे बँधने का दुराग्रह नही करता।

सुषमा।

लडकियो को जानवरो से गई-बीती नही, जानवरो से बहुत ऊँची समझा जाता है; इसीलिए ससार की प्राकृतिक परम्परा के अनुसार, उचित आयु पर, उनसे विवाह कर लेने का आग्रह किया जाता है।

इला

पति नाम के किसी तानाशाह को आत्मसमर्पण करके उसकी इच्छाओ की दासता का पट्टा लिख देना ही तो यौवन का सबसे बडा वरदान नही है। स्त्रियो के लिए विवाहित जीवन नरक ही का दूसरा नाम होता है, क्योकि अधिकाश पुरुष प्राय· स्वेच्छाचारी, आदर्शहीन और अभिमानी होते है। हमारा समाज तरुण लड़कियो से यह क्यो नही कहता कि वे वायुयान चलावे, हिमालय की सबसे ऊँची चोटी की सैर करे, समुद्र की गहराई, लम्बाई और चौडाई का माप करे; मशीनगन, टैंक, बम और टारपीडो चलावे; बडी-बडी क्रान्तियो का नेतृत्व करे, आन्दोलनों का सगठन करे।

सुषमा

नारी, सहार की नही, सृजन, पालन और रक्षण की साधना की प्रतिमूर्ति है। मातृत्व ही नारीत्व का पूर्णत्व है और उस पूर्णत्व के लिए विवाह ही एकमात्र अनिवार्य मार्ग है, इला बहन!

इला

ससार मे कीडो-मकोडो की कमी नही है। गुलामो की सख्या बहुत बडी है। फिर इस क्षुद्र कार्य के लिए जीवन भर को किसी पुरुष की गुलामी का रस्सा गले मे क्यो बाँध लिया जाय?

[एक ओर से बरामदे में आकर उमादेवी बिजली का स्विच खोलती हैं। इला और सुषमा सिर घुमाकर देखती हैं। उमादेवी उनकी ओर आती हैं। सुषमा, और सुषमा के साथ इला, खडी होती

है। सुषमा नमस्कार करती है। उमादेवी प्रति-नमस्कार करती हैं। उमादेवी की पोशाक पुरातन पर नूतन की प्रायः चालीस प्रतिशत छाप व्यक्त कर रही है। उसपर पुराने वैभव के काफ़ी चिह्न वर्तमान हैं।]

उमा

पगली लडकियो, अँधेरा होने वाला है, पर, तुममे से कोई भी उठकर बिजली का स्विच खोल लेने की आवश्यकता नही समझती। बड़ी तन्मय हो बातो मे! ऐसी क्या बाते हो रही है? अच्छा बेटी सुषमा, तुम तो कुछ समझदार हो, तुम्ही हमारी इस पगली बिटिया को कुछ समझाओ। इसके मारे मै और इसके पिताजी तग आ गए है। कितने लड़को को देखने को बुला चुके! इसे कोई पसन्द ही नही आता!

[तीनों कुर्सियों पर बैठती हैं।]

इला

देखो माँ, मै एक बिलकुल अलग किस्म की लडकी हूँ। मै यहाँ अनुभव करती हूँ कि मेरा जन्म इस समाज की सड़ी-गली परम्पराओ को तोड़नेको हुआ है, परिपालन को नही। यह बिलकुल सत्य है कि मैने विवाह न करने का निश्चय कर लिया है। मै ऐसे विषयों मे सकोच से स्पष्टवाद को अधिक पसन्द करती हूँ। मैने कई बार अपना निश्चय तुमपर और पिताजी पर प्रकट भी कर दिया, पर, तुम लोग तो मुझपर विश्वास ही नही करते; और, कभी किसी को, तो कभी किसीको, बुलाकर परेशान करते ही रहते हो। उन बेचारे युवकों का जीवन भी विवाह के बधन मे बाँधकर नष्ट करना चाहते हो। यदि तुम लोग मेरे निश्चय को अचल समझ लो, तो बहुत-सी झझटों और चिन्ताओसे मुक्त हो जा सकते हो। मै फिर कहती हूँ कि मेरे लिए विवाह करना असभव है। मै और लड़कियो—जैसी लड़की नही हूँ।

उमा

ऐसा भी कही हुआ है बेटी! कही लड़की भी क्वारी रही है! लड़का चाहे क्वारा रह जाय, पर, लड़की!

इला

लडकी को तो दासता का जुआ कन्धे पर रखना ही पडेगा! लडकी का बलिदान किए बिना, उसे घर से निकाले बिना, तो, माँ-बाप सुख की नीद सो ही नही सकते! उनके घर पर तो लडके ही का एकाधिकार होना चाहिए, लडकी उसमे हिस्सा बँटाने को कैसे बाकी रहने दी जा सकती है!

सुषमा

माताजी, इलादेवी के लिए आप इतनी परेशान न हो। यह स्वय समझदार है और मै भी इन्हे समझाऊँगी। यह तो मानवी मनोवृत्ति है। यदि अभी इनका रुझान विवाह की ओर नही है, तो इसका अर्थ यह नही है कि कभी न होगा। कभी न कभी तो यह आपका अनुरोध स्वीकार करेगी ही। [इला से] अच्छा इला-बहन, अब मै जाती हूँ। पिताजी, माताजी और विदनोकुमार मेरी बाट देख रहे होगे। आज विनोद का हमारे यहाँ निमन्त्रण है। अच्छा, कल कॉलेज मे मिलूँगी।

इला

अच्छा बहन, नमस्ते! कल मेरा कॉलेज जाना न हो सकेगा। हरिजनो के मुहल्ले में कुछ लोगो के साथ जाना है।

सुषमा

हरिजनो के मुहल्ले मे! अच्छा, नमस्ते बहन! नमस्ते माता जी!

[उमादेवी प्रति-नमस्कार करती हैं। सुषमा जाती है।]

उमा

ब्याह से आखिर तुझे इतनी चिढ़ क्यो है? सारी दुनिया मूर्ख है और तू ही अकेली समझदार है, इतना अभिमान तुझे क्यो है?

इला

विवाह न करना अभिमान नही है, माँ! वह तो व्यर्थ का उत्तर-

दायित्व न उठा सकने वाली लडकी की अपनी मजबूरी है। और फिर, सिद्धान्तों का भी प्रश्न है। मै विवाह को एक स्वार्थपूर्ण पुरानी परिपाटी मानती हूँ। इसमे कोई नवीनता नही है। जीवन, विवाह से भी बडे बहुत-से कार्य करने के लिए है। ससार मे कोई बड़ी क्राति उपस्थित करने की इच्छा रखने वाले तरुण-तरुणियों को विवाह के बाद निराश ही होना पड़ता है। उस दशा मे उनमे से प्रत्येक को पद-पद पर दूसरे की स्वीकृति का मुहताज होना पड़ता है। उधर, कुछ विवाह के उत्सुक तरुणो ने तो इस प्रश्न को एक तमाशा-सा बना रखा है।

उमा

तमाशा कैसा ?

इला

वे विवाह के लिए दर-दर की ठोकरे खाया करते है। इन महाशय विनोदकुमार ही को ले लीजिए। विमला के पिता विलायत-पास दामाद चाहते थे, पर, इनकी पढाई बहुत ज़ोर मारने पर भी अपने नगर के कालेज की सीमा के बाहर न निकल सकी। उधर से निराश होकर हम लोगो के सर हुए। मेरे अस्वीकार कर देने पर अब सुषमा के घर जाने लगे है। और प्रत्येक स्थान पर अपनी योग्यता, चारित्र्य, त्याग, वलिदान और अग्नि-परीक्षा की तैयारी की दुहाई देने को तैयार हैं। किसी बड़े काम के लिए नही, केवल किसी लड़की से किसी प्रकार विवाह कर पाने के लिए!

[शान्तिस्वरूप आते हैं। प्रतिष्ठित नागरिक। पिता। चेहरा पितृत्व के गौरव से मंडित। पोशाक ज़िम्मेदारियों की गंभीरता के अनुरूप, सौष्ठव और वैभव के साथ, काफ़ी सादगी लिए हुए। आकर ख़ाली कुर्सी पर बैठते हैं।]

शान्तिस्वरूप

घरही मे व्याख्यान हो रहा है इला! मालूम होता है, तुम नेता

हो और उमादेवी जनता । चुपचाप तुम्हारा सारा व्याख्यान सुने जा रही है। चुप क्यो हो गई बेटी ! इस बूढे पिता को भी सुन लेने दो।

उमा

तुम्हारी और कसर थी । तुम और सुन लो ।

इला

मै निरर्थक बकवास नही कर रही हूँ, पिताजी ! विवाह-जैसी पुरानी और गहरी जमी हुई कुछ व्यर्थ की परिपाटियो पर आघात करना मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण का कार्य है। उसीपर मै अपने विचार प्रकट कर रही हूँ ।

उमा

इला तो यो ही नाराज होती रहेगी, पर, हमे तो अपना कर्त्तव्य-पालन करना ही चाहिए । हमे निराश न होना चाहिए । इधर-उधर बात-चीत और लिखा-पढ़ी करके योग्य लडकों को देखने को बुलाते रहना चाहिए । सम्भव है, कभी कोई इसे पसन्द आ जाय ।

इला

असम्भव है। मेरा निश्चय बिलकुल दृढ है। मै विवाह न करूँगी । आप लोग क्यो भलेमानसो को अपमानित कराने के लिए बुलाया करते है।

शान्तिस्वरूप

अच्छा, देख, यह एक जनसेवक है। **[जेब से पत्र निकालकर]** ऊँची शिक्षा पाई है, पर, रुपया बटोरने के बदले जनता की सेवा मे अपनी सारी शक्तियाँ लगाने का निश्चय कर चुके है। तूने शायद नाम सुना होगा । बनारस के प्रसिद्ध नेता प्राणनाथ जी के सुपुत्र रत्ननाथ।

इला

जनसेवको को तो माफ कीजिए पिताजी ! देश के ये रत्न अविवाहित रहकर ही देश की सच्ची सेवा कर सकते है । मै नही चाहती कि ऐसे लोगों को भी आप बुलाकर परेशान करें। यह निश्चित

है कि मुझे विवाह नही करना है। यदि समय नष्ट ही करना हो, तो बेकारो और बेवकूफो का कीजिए। देश के ऐसे कार्यकर्ताओ का समय तो बहुत मूल्यवान् होता है।

शान्तिस्वरूप

[**पत्र जेब में रखकर**] तेरी जिद से भी बड़ी परेशानी है इला! आखिर, इस तरह कब तक रहेगी?

इला

उम्र भले ही धीरे-धीरे बुढापे तक बढती जाय, पर, उम्र के साथ-साथ भोजन की मात्रा नही बढ सकती। मेरे खर्च का भार आपके घर-पर बढेगा नही। यदि प्रकाश-भैया के भविष्य पर से आप मेरा इतना-सा भार भी हटाना चाहे, तो कह दीजिए! पढ़ना जल्द समाप्त करके स्वावलम्बी बनकर अलग रह सकती हूँ।

शान्तिस्वरूप

ऐसी बाते न कह बेटी! इनसे हमारे हृदय पर चोट पहुँचती है। हम तेरे हित ही की दृष्टि से तेरे विवाह की बात करते है। तेरे सुख के सिवा हमारा और कोई उद्देश्य नही।

[**प्रकाशचन्द्र आता है। नटखट बालक। जाँघिया और आधी बाँहों-का कुरता पहने। सिर के बाल अस्त-व्यस्त।**]

प्रकाश

अब तो हम घडी जरूर लेगे। सोने की! आपने कहा था कि जीजीके ब्याह तक जरूर मँगा देग। कब तक होगा जीजी का ब्याह? क्यो जीजी?

इला

तू भी ब्याह की रट लगाने लगा! अच्छा है, दोनो काम एक-साथ साध लेगा भैया; घड़ी भी मिलेगी और जीजी की रोटियो का भार भी टल जायगा। आखिर, जीजी को इस घर से निकालने की इतनी जल्दी क्यो है तुझे?

[**प्रकाश गरदन झुकाकर पैर का अँगूठा धीरे-धीरे भूमि पर रगड़ता है।**]

उमा

इससे कौन जीत सकता है ! बेचारे बच्चे को कैसा चुप कर दिया!

इला

अच्छा, तू चिन्ता न कर प्रकाश! जा खेल ! विवाह तो नही होगा, तेरी जीजी सदा तेरे पास ही रहेगी, पर, तुझे घडी अवश्य मिलेगी। मुझे जो कालेज की व्याख्यान-प्रतियोगिता का पुरस्कार मिलेगा, वह तेरी घडी के लिए काफी होगा।

[प्रकाश जाता है। टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है। शान्तिस्वरूप उसके पास जाते और उसका चोंगा उठाकर कान और मुँह से लगाते हैं।]

शान्तिस्वरूप

जी !.. मै शान्तिस्वरूप। आप कौन साहब ?.... अच्छा। कहिए ! .. है। ठहरिए, बुलाता हूँ ! इला ! शभुदयाल जी तुझे बुला रहे है !

[चोंगा मेज़ पर रखकर आकर कुर्सी पर बैठते हैं। इला फ़ोन पर जाती है। चोंगा उठाकर कान और मुँह से लगाती है।]

इला

जी, कहिए, मै हूँ इला......आपकी लडकी का ब्याह ?... उसी तारीख़ का ? मै ? परिषद् का उद्घाटन करने ? प्रबन्ध करना होता, तो कुछ सेवा कर भी आती। मै इस योग्य नही।......आग्रह ! क्षमा कीजिए।......आज्ञा ! अच्छी बात है ! असफलता की जिम्मे-दारी आपकी है।......अच्छा ! नमस्ते ! **[चोंगा रखकर कुर्सी पर आकर बैठते हुए]** यह इल्लत इनके पीछे भी लग गई !

उमा

कैसी इल्लत ?

इला

वही लडकी के विवाह की इल्लत। नेतागिरी और लड़की का

विवाह, दोनो का एक ही मुहूत निकल आया है। जिले के नेतृत्व के सर्वोच्च पद पर होते हुए भी उसी समस्या के शिकार है बेचारे ! जिला-राजनीतिक-परिषद् के अध्यक्ष की हैसियत से परगना-राजनीतिक-परिषद्-का उद्घाटन करने जाने वाले थे . बेचारे देहात के कार्यकर्ताओ ने कितने उत्साह से तैयारियाँ की होगी। तारीख निश्चित हो गई। घोषित हो गई। इस बीच अचानक लडकी से पिण्ड छुडाने का स्वर्ण-सुयोग, शुभ मुहूर्त, आ पहुँचा ! शायद कोई ऊँची वेदी मिल गई है बेचारी के बलि-दान के लिए ! बस, सारी ग्राम-सेवा हवा हो गई। अब नही जा सकते देहात मे ! एक-दो दिन का मामला होता, तो झटपट निबटाकर देहात जा सकते थे; पर, जीवन भर के लिए लडकी की बला घर से टालने-के महोत्सव की तैयारी ठहरी ! उसके लिए पन्द्रह-बीस दिन से कम का समय कैसे लग सकता है !

शान्तिस्वरूप

तो तुझे इसमे क्या परेशानी है ?

इला

कह रहे थे कि उनके बदले मै परिषद् का उद्घाटन कर आऊँ ! कालेज के चौथे वर्ष की छात्रा होना मेरी कोई बडी बौद्धिक योग्यता नही है। साल-छः महीने कुछ आदोलनो मे जेल हो आना भी कोई बडा इति-हास नही है। खादी पहन लेना भी मेरी कोई बडी विशेषता नही। मेरे हाथो उद्घाटन कराकर लोग क्या सन्तुष्ट होगे ! आग्रह ही बना रहता, तो टाल जाती, पर, कहते है कि आज्ञा है ! आज्ञा कैसे टाली जाय ? उधर उन बेचारे सम्मेलन के सयोजको को आज्ञा दे दी होगी ! जिले की राजनीति के तानाशाह जो ठहरे !

उमा

तो हो क्या गया ! व्याख्यान ही तो झाड़ना है ! जाकर झाड आना। माँ-बाप के सामने न सही, देहानियो के सामने सही।

शान्तिस्वरूप

और इस कार्य मे तेरी बराबरी करनेवाले थोडे ही होगे !

[**बूढी रंभा मिसराइन आती है । मालिकों की उदारता से उत्पन्न वस्त्रों की सफ़ाई पर परिश्रम के फल के मैलेपन के कुछ दाग़ ।**]

रम्भा

अब मुझसे नही होता बहूजी ! देखिए, हाथ पर गरम घी के छीटे पड़ गए ! जिन्दगी बीत गई आपका खाना बनाते । इला बिटिया के जनम के बखत नौकर हुई थी । अब यह ब्याह के लायक हुई । अब मुझे छुट्टी और पिन्सन मिलनी चाहिए ।

इला

लाओ मिसराइन, देखूं तुम्हारा हाथ । कहाँ जला है ? [**हाथ में हाथ लेकर देखती है**] हाथ तो जला ही है, हाथ के साथ-साथ तुम्हारा दिमाग भी खराब हो गया है । तुम भी इन लोगो मे मिल गई [**हाथ छोड़कर**] चलो भीतर । कुछ लगा दूं ! माँ, बाप, भाई, सखी, सहेली, मित्र, नेता, सब के साथ रम्भा मिसराइन की भी जरूरत थी । तुम भी ब्याह की रट लगाने लगी । तुम्हे भी इला का इस घर मे रहना अखरने लगा । आखिर, मैंने तुम सब लोगों का क्या बिगाड़ा है ! चारों ओर से एक ही आग्रह—'ब्याह करो, ब्याह करो !' एक ही रट—'ब्याह, ब्याह!' आखिर दुनिया मे और भी तो कुछ काम है । विवाह ही तो सबसे बड़ा काम नही ! मेरी समझ मे नही आता कि कोई समझदार लडकी या लडका विवाह के बन्धन मे बँधना कैसे सहन कर सकता है !

उमा

अच्छा, अच्छा ! ज्यादा नाराज होना ठीक नही । अन्दर चलकर इस बेचारी के हाथ पर कुछ लगा दे और खाने-पीने का इन्तजाम कर ! [**शान्तिस्वरूप से**] चलो जी, चले !

[**सबका प्रस्थान**]

[**पट-परिवर्तन**]

दूसरा दृश्य

[दोनो ओर बग़ीचों और बँगलों वाली सड़क। सडकपर सन्ध्या की शान्ति। अँधेरा होने के पहले का समय। नवीनचन्द्र और माधवीदेवी का टहलते हुए प्रवेश। नवीनचन्द्र मे पोशाक और जीवन की स्वाभाविक सादगी। माधवी में फ़ैशन के जीवन को छोडकर महसा सादा जीवन अपना लेने की तीव्रता।]

नवीनचन्द्र

फैशन के अस्वाभाविक जीवन से सादगी के स्वाभाविक जीवन की ओर अचानक मुडना एक ऐसी घटना होती है माधवी देवी, कि प्रारम्भ-मे कुछ लोगो को उस मोड मे एक अस्वाभाविक तीव्रता नज़र आती है, किन्तु, धीरे-धीरे वह परिवर्तित जीवन जनता की दृष्टि मे एक सुखद स्वाभाविकता प्राप्त कर लेता है ।

माधवीदेवी

मै चाहती हूँ नवीनचन्द्र जी, कि मै अब अस्वाभाविक रूप से कुछ भी न करूँ। जीवन को अब स्वाभाविक गति मिल गई है। अब यह अपना विकास स्वय कर लेगा। मेरा पिछला फैशनपरस्त जीवन एक लम्बा दुस्वप्न था, पर, उसके आडम्बर के विनाश के लिए एक क्षण ही काफी हुआ। सूर्य की पहली किरण का पहला क्षण ही फूल के विकास के लिए काफी होता है। मैने अब अपने पिछले जीवन के सारे आकर्षक उपकरणो को नष्ट करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया है। यह तो मेरा अपने-आप से सघर्ष हुआ, पर, अपने जीवन-परिवर्तन को लेकर मुझे अपने घर-भर से जो सघर्ष करना पड़ रहा है और करना पडेगा, वह और भी कठिन है ! उसके लिए भी मै दृढता और शान्ति से तैयार हूँ। मै सबसे लड गी और डटकर लडूँगी। मै कोई गुड़िया तो हूँ ही नही कि वे लोग मुझे जीवन भर अपनी इच्छा के अनुसार ही सजाते रहे ।

नवीनचन्द्र

बात है भी कुछ आश्चर्य की। 'आई० सी० एस' पिता और 'एफ० आर० सी० एस०' माता की कन्या और स्वय बैरिस्टर होकर भी आप यह हिन्दुस्तानी गँवारिनों का समझा जाने वाला खादी का वेश धारण करने लगी है। यही नही, इस पर गर्व भी करने लगी है। इसे भी कही आपके कुटुम्बी सहन कर सकते है! आप तीनो की शिक्षा विलायत मे होने पर भी आपके माता-पिता को यह पछतावा अवश्य रह गया होगा कि उनका और आपका जन्म भी वही क्यो नही हुआ। शायद इसी कसर को पूरी करने के लिए आपके छोटे भाई को विलायत मे जन्म लेने-का अवसर दिया गया था। काश कि वह जीवित रहा होता!

माधवी

यदि भाग्यवश वह जीवित रहा होता, तो कौन कह सकता है कि नवयुग के क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रभाव उसपर न पडा होता! सारी नौजवानी विलायत मे बिताने वाले और इँग्लैंड के विश्वविद्यालयो के सौ-फी-सदी चेले बनकर भारत लौटने वाले कई प्रसिद्ध भारतीयो के हृदयो मे विदेशी साम्राज्यवाद और विदेशी वेश-भूषा के प्रति पाई गई घृणा विश्वविख्यात हो चुकी है।

[सुषमादेवी का प्रवेश]

सुषमादेवी

गुड ईवनिग, मिस माधवी! नमस्ते, नवीनचन्द्र जी!

नवीनचन्द्र

नमस्ते, सुषमादेवी!

माधवीदेवी

नमस्ते, सुषमा-बहन!

सुषमा

अरे वाह मिस माधवी! आज तो आपके शरीर पर सिर से पैर तक खादी-ही-खादी नजर आ रही है और वह भी बिलकुल विशुद्ध!

माधवी

क्षमा कीजिए, सुषमा-बहन ! 'गुड ईवनिंग मिस माधवी !' सुनना अब मुझे अच्छा नही लगता । यदि आप 'नमस्ते, माधवी-बहन !' न कहना चाहती हो, तो 'नमस्ते, माधवीदेवी !' ही कहा कीजिए । यदि आप नाराज न हो तो, मै तो आपसे 'सुषमा-बहन' ही कहना चाहूँगी, आप भले ही मुझसे सभ्यता की दूरी से 'माधवीदेवी' ही कहे ।

सुषमा

इसमें नाराज़ी कैसी ? यह तो खुशी की बात है, माधवी-बहन ! आज से आप मुझसे 'सुषमा-बहन' कहा कीजिए और मै भी आपसे 'माधवी-बहन' कहा करूँगी ।

माधवी

और मुझे सिर से पैर तक शुद्ध खादी पहने देखकर भी आपको आश्चर्य न करना चाहिए । इधर, कुछ दिनो से, इन—जैसे स्वाभाविक आदर्शवादी पथ-प्रदर्शक की कृपा से मुझे यह स्वाभाविक स्वरूप प्राप्त हो गया है । अस्वाभाविक तो मेरा वह स्वरूप था, जब मै ऊँची एडी के जूतो पर सोलहों आने विलायती पोशाक पहनती थी ! आश्चर्य तो आपको उस पोशाक को देखकर करना चाहिए था । पर, वैसा तो कभी नही हुआ ।

सुषमा

आपके और आपके कुटुम्ब के लिए वह वेष-भूषा इतनी स्वाभाविक बन गई थी कि उसमें आश्चर्य की कोई गुन्जाइश ही नही रह गई थी । आश्चर्य तो इस परिवर्तन पर ही स्वाभाविक है । परन्तु, मै आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यह आश्चर्य निन्दासूचक नही, प्रशसासूचक ही है।

माधवी

मुझे तो तब सन्तोष होगा, जब निन्दा और प्रशंसा की सीमा से बाहर निकलकर मेरा यह परिवर्तन संसार की आँखो मे अत्यन्त स्वाभाविक बन जायगा ।

सुषमा

किन्तु, बहन, यह तो तभी सभव हो सकता है, जब कोई अत्यन्त स्वाभाविक आदर्शवादी पुरुष आपका जीवन-सहचर बनकर आपका निरन्तर पथ-प्रदर्शन करे और आपसे स्थायी सहयोग करे।

माधवी

यदि मेरा ऐसा सौभाग्य हो ... .

नवीनचन्द्र

यह तो मोह है, दुर्बलता है। मानवता, विश्व या देश की पुकार हमे विशुद्ध रूप ही मे सुनने का अभ्यास करना चाहिए। यदि हम उनके प्रति अपना कर्तव्यपालन करने के लिए अपने जीवन, वेश-भूषा और रहन-सहन-मे परिवर्तन करने को तैयार हो, तो केवल उन्हीके लिए, उन्हीके कारण और उन्हीके सहारे तैयार हो। आदर्श की बात करना हो, तो आदर्श-की बात करे और विवाह और प्रेम की बात करना हो, तो विवाह और प्रेम की बात करे। दोनो को बिलकुल अलग रखे। एक के बहाने दूसरे-की बात न करे। यह सदा याद रखें कि दोनो की बातचीत के साथी एक-ही-से नही हो सकते। आदमी-आदमी मे अन्तर होता है। अपनी व्यक्तिगत और सासारिक आकाक्षाओ को उच्च लक्ष्य-साधन की प्रेरणा-के साथ मिला लेना मानवीय दुर्बलता के रूप मे क्षम्य भले ही हो, सैद्धान्तिक रूप से प्रोत्साहन और प्रशसा के योग्य कभी नही हो सकता।

सुषमा

आपकी प्रशसा तो ससार का एक अत्यत दुर्लभ पदार्थ प्रतीत होती है।

नवीनचन्द्र

आप चाहे जो समझे, मेरा हृदय तो उस क्षण के लिए लालायित है, जब इस देश की युवतियाँ और युवक व्यक्तिगत इच्छा और अनिच्छा, राग और द्वेष के ऊपर उठकर, उच्च आदर्शो को केवल आदर्शो ही के विशुद्ध रूप मे ग्रहण करने की साधना में सफल होंगे, अपनी उज्ज्वल

साधना मे अपनी तुच्छ आकाक्षाओं का मिश्रण करना छोड देगे।

सुषमा

आपके इस दर्शनशास्त्र को ठीक-ठीक समझ सकने की योग्यता हममे नही है।

माधवी

यह मिथ्या हीनता की भावना है, बहन! इन उच्च आदर्शो के अनुसार आचरण करना भले ही कठिन हो, इनमे न समझ सकने की बात क्या है? सब कुछ बिलकुल स्पष्ट तो है! हिमालय पर चढना भले ही कठिन हो, पर, हिमालय का दर्शन तो सुगम ही है! साथ ही, तसवीर का दूसरा रुख भी है। हिमालय के लिए जितना यह स्वाभाविक है कि वह धरती की धूल को अपने समान उच्च बनने का उपदेश दे, धूल के लिए भी यह उतना ही स्वाभाविक है कि वह हिमालय से यह आशा रखे कि वह कभी नीचे उतरकर उसके समान छोटा बनकर ही रहेगा।

नवीनचन्द्र

मैं अव्यावहारिक उच्चता का समर्थक नहीं हूँ! मेरे आदर्श मेरे निकट जितने सुबोध है, उतने ही सुकर, उतने ही व्यावहारिक भी है! मेरा पूर्ण विश्वास है कि वे मेरे लिए जितनें व्यावहारिक हैं, उतने ही ससार के प्रत्येक प्राणी के लिए है। प्रकृति ने स्त्री या पुरुष किसी को भी इतना अपूर्ण नही बनाया है कि वह किसी अन्य की सहायता के बिना पूर्णता प्राप्त ही न कर सके, इतना दुर्बल भी नही बनाया है कि किसी अन्य के सहारे के बिना चल ही न सके, अकेला होने के कारण अपना कर्तव्य-पालन ही न कर सके!

सुषमा

तब क्या सचमुच आपकी दृष्टि मे विवाहित जीवन का किसी भी दशा मे कोई महत्त्व नही है, कोई उपयोगिता नही है?

नवीन

क्षुद्र सासारिकता की दृष्टि से भले ही कुछ महत्त्व हो, मानवता-

के कल्याण के लिए, उच्च लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उसका कोई महत्त्व नही। यही नही, वह उसमे बाधक भी है। हमारे समाज की वर्तमान व्यवस्था इतनी सड गई है कि उसको नीचे से ऊपर तक उलट-पलट कर नष्ट करने के लिए महान् क्राति की आवश्यकता है और क्राति के मार्ग मे सबसे बडी बाधा विवाह और प्रेम ही है। क्रातिकारी-के जीवन की यही सबसे बडी दुर्बलता है। मेरा यह भी दृढ विश्वास है कि शोषित मानवता के बन्धन तभी टूट सकते है, जब प्रत्येक कर्तव्य-शील तरुण और तरुणी, विवाह और प्रेम के मोह मे बचकर, नितान्त नि स्पृह भाव से सर्वांगीण क्राति के लिए तैयार हो।

सुषमा

आप विवाह के इतने विरोधी है! अच्छा, तो क्या केवल बौद्धिक विवाद और सैद्धान्तिक चर्चा के खयाल से आप से यह प्रश्न पूछने की धृष्टता की जा सकती है कि क्या आप मुक्त प्रेम के समर्थक है ?

नवीन

उसका समर्थक मै कैसे हो सकता हूँ! वह तो और भी निकृष्ट चीज है। उसमे तो केवल भावना और इच्छा की विवेकहीन गुलामी करनी होती है। वह तो जिम्मेदारी से बचने की कायरता और मक्कारी है।

माधवी

और पवित्र प्रेम ? आत्मिक प्रेम ? नि स्पृह प्रेम ? क्या वह भी · · ·?

नवीन

नही, वह बुरी चीज नही है। पर, पहले तो उसका अस्तित्व ही वर्तमान ससार मे दुर्लभ है और यदि सुलभ भी हो, तो भी उसकी इस युग में कोई व्यावहारिक उपयोगिता नही; कोई सक्रिय आवश्यकता नही। यह युग प्रेम के फूलो और गीतो को, अध्यात्मिकता के रहस्य-वाद और वेदना को महत्त्व देने का नही है! मैं फिर कहता हूँ कि यह

युग है क्राति का, उच्चादर्शो का और प्रखर बौद्धिकता का ! क्रांति तो सयम और साधना, तप और सघर्ष चाहती है, रक्त, पसीने और परिश्रम की माँग करती है। आज के ईमानदार युवक-युवतियो को तो प्रेम के लिए अवकाश ही न होना चाहिए, विवाह के लिए फुरसत ही नही मिलनी चाहिए। उन्हे तो चाहिए कि वे कठिन सघर्षो मे भाग ले, उच्च बलिदानो के लिए प्रस्तुत हो, हिमालय की सबसे ऊँची चोटी की सैर करे, समुद्र की गहराई, लम्बाई और चौडाई का माप करे, बडी-बडी क्रान्तियो का नेतृत्व करे......

सुषमा

जी, कहिए ! रुक क्यो गए ? आप क्या बोल रहे है, मानो, बिलकुल इलादेवी बोल रही है !

नवीन

इलादेवी ?

सुषमा

जी हाँ, इलादेवी। इसे सयोग ही कहा जा सकता है ! बिलकुल ऐसी ही बाते, प्राय इन्ही शब्दो मे, उन्होने भी कही थी। उन्होने केवल युवतियो के कर्तव्य गिनाए थे, आपने युवको को भी जोड लिया। उन्होने हवाई जहाज, मशीनगन, टैंक, बम और टारपीडो चलाने का भी जिक्र किया था, आपने उन्हे छोड दिया। उनके अन्दर-से सर्वग्राहिणी क्राति की निरी भावुकता असंयत शब्दो मे बोल रही थी; आपने अपनी भाषा पर थोडा-सा अकुश अवश्य रखा है। बाकी, मूल मे सनक दोनो की एक ही सी है !

नवीन

सनक ! आप फिर वही गलती करने लगी। यह सनक नही, आदर्शवाद है, बौद्धिकता है और वास्तविक व्यावहारिकता भी।

सुषमा

अच्छा, यही सही ! आप लोगो से जीत कौन सकता है ! मुझ-

में आपसे बहस कर सकने की योग्यता नहीं है। मुझे अब क्षमा कीजिए। काफी देर रुक गई। विनोदकुमार प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

माधवी

विनोदकुमार ?

सुषमा

हाँ, बहन ! आज उनका हमारे यहाँ निमन्त्रण है। अच्छा, अब चलूँ ! नमस्ते !

माधवी

नमस्ते !

नवीन

नमस्ते !

[एक ओर सुषमा का और दूसरी ओर माधवी और नवीन का प्रस्थान।]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[नगर की स्वच्छ बस्ती से दूर, एक किनारे, ग्रामीण क्षेत्रों के निकट, मेहतरों के मुहल्ले, हरिजन-आश्रम, का मार्ग। मार्ग पर एक ओर वृक्ष की छाया पड़ रही है। दोपहर के कुछ बाद का, अवकाश-का, समय। कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ताओ का एक ओर से अगला गान गाते-गाते प्रवेश। उनमे दो नवयुवक हैं, उपेन्द्रनाथ और गजेन्द्रसिंह; दो नवयुवतियाँ हैं, इलादेवी और मायादेवी। सबके वस्त्र सादे, श्वेत और शुद्ध खादी के हैं।]

गान

जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान।
कितने श्रमकण और रक्तकण
युग-युग से कर दान,
की सवर्ण जनता की तुमने
सेवा अथक, महान,
प्रतिफल ठोकर कृतघ्नता की,
निष्ठुरता प्रतिदान।
जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान।

[मेहतरों का चौधरी रामलाल, उसकी पत्नी जमना, उसका बालक-पुत्र बिहारी और मेहतर-मित्र छोटेलाल, सब, इन आगत कार्यकर्ताओं-का, दूसरी ओर से आगे आकर, स्वागत करते हैं।]

रामलाल

पधारिए महाराज! हमारे धन्य भाग! आप लोगो के चरनो की धूल से हम गरीबो का मुहल्ला पवित्र हो गया। झोपडियों में पधारते,

तो वे भी तर जाती, पर वे इस लायक कहाँ है? यही खुले मे, पेड की इस छाया में, बिराजिए। अरे बिहारी! दौड तो बेटा! जल्द जाकर चटाइयाँ ले आ।

छोटेलाल

इसे क्यो दौडाते हो चौधरी! मैं चला जाऊँ?

उपेन्द्रनाथ

रहने दो चौधरी! चटाइयो की कोई जरूरत नही है! हम लोग यहाँ मेहमान बनकर थोडे ही आए है!

गजेन्द्रसिंह

चटाइयाँ मँगाने की गलती न करना, चौधरी! यहाँ चटाइयो पर बैठने वाले आसामी नही है! या तो छपर-पलँग पर बैठेंगे या फिर सीधे ज़मीन पर आ धमकेंगे! बीच मे रुकने वालो मे हम लोग नही हैं।

रामलाल

जमीन पर नही महाराज! चटाइयो मे कौन बडी भारी मेहमानदारी हुई जाती है। जमीन पर आप लोगो के कपडे मैले हो जायँगे। कम से कम बहन-बेटियो के लिए तो चटाइयाँ बिछानी ही चाहिए। और हमें भगवान ने क्या खातिर करने लायक बनाया है? आप लोगो का मैला साफ करके किसी तरह दिन गुजारा करते हैं।

गजेन्द्रसिंह

लीजिए, देवियो, आप लोगो के कारण हम लोग भी मेहमानो में मिला दिए गए।

इलादेवी

क्यो चौधरी! हमी लोगों ने ऐसा कौन-सा पाप किया है कि हमे चटाइयो पर बैठाने का ख़ास दण्ड दे रहे है! रहने दीजिए न! और फिर मैला साफ करने की बात कहकर हमे क्यो शर्मिन्दा कर रहे है।

रामलाल

अरे, तू जा बेटा बिहारी ! जल्द जाकर चटाइयाँ ले आ !

[बिहारी दौड़कर चटाइयाँ लेने जाता है ।]

इला

शुद्ध धरती माता की स्वाभाविक गोद मे रहने के अभ्यासी होते हुए भी आप लोग हम लोगो के साथ शहर वालो—जैसा यह तकल्लुफ क्यों बरतना चाहते है ? उसमे ऊबकर तो हम आप लोगो के यहाँ आते है ।

[बिहारी दौडकर चटाइयाँ ले आता है । शीघ्र ही बिछाता है । रामलाल हाथ जोडकर सबकी ओर बैठने के प्रबल अनुरोध से भरा हुआ इंगित करता है । सब लोग बैठते हैं ।]

उपेन्द्रनाथ

[रामलाल आदि से] आप लोग भी तो बैठिए !

[हरिजन भी एक तरफ़ ज़मीन पर बैठ जाते हैं ।]

इलादेवी

जमीन पर नही, आप लोग भी इन्ही चटाइयो पर बैठिए ।

रामलाल

आप लोग हमारे बैठने की चिन्ता न कीजिए । हमारे लिए तो धरती-माता की गोद ही बहुत है । चटाइयाँ तो मेहमानो ही के लिए है । हमारे लिए तो मालिक ने धरती का बिछौना और आसमान का ओढना बना दिया है । यही हमारा छपरपलँग है ।

उपेन्द्रनाथ

यह तो आप लोगो का अन्याय है । आप हमे लज्जित करते है । आप लोग सबसे कड़े परिश्रम वाली सेवा करते है, फिर भी आपको अछूत बनाकर आपके साथ हजारो वर्षो से हम, हमारे बाप-दादे और हमारे भाई-बहन अन्याय करते आ रहे है । उस पाप के प्रायश्चित्त के लिए उचित तो यह था कि हम आप लोगो को सर-आँखों पर बिठाते,

पर, आप तो हम से दूर-दूर और नीचे स्थान पर बैठकर हमे और भी पाप का भागी बना रहे है। इस तरह तो आप लोग हमें अपने सुख-दुःख मे कभी हिस्सेदार न बनने देगे।

रामलाल

नही महाराज! आप लोग तो हमारे माई-बाप है, अन्नदाता है। आप हमसे अलग कब है। अब रही छुआछूत की बात, सो यह तो ससार का नियम है। भगवान् ही ने जब हमे अछूत बनाया है, तब आप हमारा उद्धार कैसे कर सकते है?

इलादेवी

ये सब मनगढन्त बाते है चौधरी! ईश्वर ने किसी को अछूत बनाकर नही भेजा। और उद्धार तो आप लोग हम लोगो का करेगे, हम लोग आप लोगो का उद्धार सचमुच नही कर सकते।

रामलाल

हम तो आप लोगो के चरनो के दास है। हमारी हैसियत भी, तो कुछ नही है।

गजेन्द्रसिंह

हम लोगो को खूब दूर-दूर ठेल रहे हो चौधरी! क्या कभी शुभ दिन आने पर बिहारी के ब्याह के लड्डू हमे न खिलाओगे? क्या सचमुच बचत करना चाहते हो? चौधराइन तो इतनी कजूस न होगी!

छोटेलाल

हमारी जमना चौधराइन की क्या बात करते है महाराज! हमारे रामलाल चौधरी को जैसी चौधराइन मिली है, वैसी बड़े भाग से किसी-को मिलती है! इनका भण्डार हम सब के लिए हमेशा खुला रहता है। हाँ, आपके लायक तो हम लोग हो ही नही सकते। क्यो चौधराइन?

जमना

सब इन्ही लोगो के चरनो का परताप है, भैया छोटेलाल! हम किस लायक है! आगे की बात किसने देखी है! वह खुशी की

घडी आने तो दो। मेरे कहाँ ऐसे भाग होगे कि बिहारी के ब्याह का दिन देख सकूँगी !

इलादेवी

पागल हुई हो चौधराइन ! यह गजेन्द्रसिंह जी तो यो ही है ! क्या बेतुकी बात छोड बैठे ! और तुम इनकी बातो मे आकर अच्छे-भले लडके को ब्याह के जुए मे जोतने के मनसूबे बाँधने लगी ! बिना ब्याह किए क्या दुनिया मे जिन्दगी अधूरी ही रह जाती है ? हर एक के दिमाग मे इस ब्याह ने घर कर रखा है। इस ब्याह के पागलपन ने लोगो को बिलकुल निकम्मा बना दिया है। जिसे देखो, वही लडके-लडकियो को ब्याह की रस्सी मे बाँधने को फिरता है ! क्यो रे बिहारी, तू तो पागल नही हुआ है ? तू ब्याह तो नही करेगा ?

बिहारी

नही।

उपेन्द्रनाथ

क्यो ? क्या इलादेवी के बहकावे मे आ गया ?

बिहारी

नही, दादा का भी हुकम नही है।

इलादेवी

दादा कौन ?

रामलाल

हमारे एक मेहरबान है। उन्ही से यह 'दादा' कहा करता है। वह भी ऐसी ही बाते किया करते है। ब्याह का नाम सुनकर बडे नाराज होते है। उनका नाम है नवीनचन्द्रजी।

इला

नवीनचन्द्रजी ?

रामलाल

हाँ, अन्नदाता ! उनके आने का वक्त हो गया। बस, अब, आते ही

होगे । यह बिहारी तो उनसे ऐसा हिला है कि उनके साथ बदतमीजी भी कर बैठती है । वह तो रोज आते है । घटो हम लोगो के साथ बैठकर बात-चीत किया करते है । हमारे काम मे भी जबर्दस्ती हाथ बँटाते है । बिल-कुल घुल-मिल गए है । ऊँची जात, धन-दौलत, विद्या, सबको छोडकर हम-जैसे गरीबो के साथी बन गए है । अपनी एक छोटी-सी झोपडी भी यही बना ली है ।

उपेन्द्रनाथ

झोपडी भी यही बना ली है ?

रामलाल

हाँ, यही बना ली है । रोज बहुत देर तक उसमे रहते है । क्या कहे, बिलकुल देवता है, देवता ! किसी से नफरत नही करते, किसी के काम से परहेज नही करते । उनकी बडाई करने को सौ मुँह चाहिए, सौ मुँह ! पर, उनकी एक यही बात बडी अटपटी है । कुछ समझ ही मे नही आती । उनका भी कहना है कि लडके-लडकियो का व्याह करना बहुत बुरी बात है, जिन्दगी की बरबादी है ।

[नवीनचन्द्र एक ओर से धीरे-से आकर बिहारी की आँखें पीछे-से अपने हाथों से बन्द कर लेता है । बिहारी अपने दोनों हाथों की तालियाँ बजाकर प्रसन्न होता है ।]

बिहारी

ओ हो ! नवीन दादा आ गए ! ओ हो !

[नवीनचन्द्र बिहारी की आँखें छोडकर सबसे 'नमस्ते' करते हैं, सब नवीनचन्द्र से 'नमस्ते' करते हैं ।]

नवीनचन्द्र

आज तो बहुत-से मेहमान आए है चौधरी ! इनकी मेहमानदारी का क्या इन्तजाम कर रही हो जमना मैया ? मुहल्ले के पिछवाड़े ही तो तुम्हारे बिहारी का नन्दन-वन है । क्यो बिहारी भैया ? क्या कुछ इमली, अमरूद, बेर तोड़कर रखे है या मै तोडकर लाऊँ ?

बिहारी

तुम क्यो लाओगे नवीन दादा ? मै ही तोड लाऊँगा । ये सब गाते-गाते आए थे । बडा अच्छा लगा था गाना । फिर इनकी बाते सुनता रहा । उधर जाना भूल गया । तुम भी यही कहते हो न, दादा, कि ब्याह किसी को कभी न करना चाहिए । मै कभी ब्याह न करूँगा । बडा हो जाने पर भी नही । इलादेवी भी कहती है कि किसी को कभी ब्याह नही करना चाहिए ।

इला

'इलादेवी' मत कहो बिहारी-भैया, 'इला-जीजी' कहो !

बिहारी

क्यो दादा ? क्या 'इला-जीजी' कहना चाहिए ?

नवीनचन्द्र

अच्छा, उसका फैसला फिर करेगे । पहले यह बताओ कि क्या इन लोगो का गाना तुम्हे सचमुच बहुत पसन्द आया था ? तुमने उसका मतलब भी समझा था ?

बिहारी

मतलब तो नही समझा, दादा, पर, गाना सुनने मे बडा अच्छा लगा था ! थोडी ही देर सुना था । फिर सुनेगे गाना ।

नवीन

अच्छा, तो इन लोगो से कहो कि वह गाना फिर सुनावे ।

बिहारी

हॉ, जरूर ! बड़ा अच्छा लगा था । जरूर सुनेगे । फिर सुनेगे । फिर गाइए गाना ।

इला

अगर गाना सुनना है, तो हमसे कहो 'इला—जीजी' ! तुम पूरा गाना सुन ही कब पाए थे ? अगर 'जीजी' कहो, तो सुनावे पूरा गाना ।

बिहारी

क्यो दादा ?

नवीन

आपने तो बेचारे बच्चे को उलझन मे डाल दिया ! अच्छा, भैया, कह दो 'इला-जीजी' ! गाना सुनना चाहोगे, तो कहना ही पडगा ।

बिहारी

अच्छा, कहते है 'इला-जीजी' ! गाना गाइए इला-जीजी ! सब लोग फिर गाइए गाना !

गजेन्द्रसिंह

अकेली इला जीजी ही गायँगी ! हम लोग कोई न गायँगे । हमसे गाना सुनना चाहो तो, हमसे भी कहो 'गजेन्द्र-दादा' !

नवीन

अब तो फँस गए, भैया ! जो कुछ कहाएँगे, कहना ही पडेगा । इनसे भी कह दो 'गजेन्द्र-दादा' !

बिहारी

अच्छा, कहते है 'गजेन्द्र-दादा' । अब जल्द सब लोग गाना गाइए, हम और नवीन-दादा सुनेगे ।

गजेन्द्रसिंह

नवीन दादा सुनेगे नही, इन्हे भी हम सबके साथ गाना पडेगा । नही तो, कोई नही गाएगा ।

[सबका मधुर हास्य]

नवीनचन्द्र

अच्छा, भई, मै भी गाने का यत्न करूँगा । बिहारी-भैया का मन तो रखना ही पडेगा । क्यो चौधरी ?

रामलाल

आप ही ने इसे सिर पर चढाया है, आप ही भुगतिए !

बिहारी

अच्छा, अब बाते बन्द करो ! हम गाना सुनेगे।

[नवीनचन्द्र-सहित सबका अगला गान गाना]

गान

जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान ।
तुम सेवा, श्रम, सहनशीलता,
तप के स्वर्गिक दूत !
यह पशु-पूजक देश समझता,
फिर भी, तुम्हे अछूत ।
महामानवो ! तुम पशु से भी
नीचा पाते स्थान ।
जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान ।
मानवता के मूक सेवको !
तुम गुदडी के लाल ।
तुमको पा होता कोई भी
उन्नत राष्ट्र निहाल ।
पर, पद-पद पर तुम भारत मे
पाते हो अपमान ।
जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान ।
कितने श्रमकण और रक्तकण
युग-युग से कर दान,
की सवर्ण जनता की तुमने
सेवा अथक, महान ।
प्रतिफल ठोकर कृतघ्नता की,

निष्ठुरता प्रतिदान ।
जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान ।

मब से बडा अभाग्य तुम्हारा—
सब से बडा अभाव—
तुममे अब तक हुआ न जाग्रत
स्वाभिमान का भाव ।
आत्म-बोध से हीन, दलित तुम,
शोषित हो, अनजान ।
जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
जीवन है बलिदान ।

नवीनचन्द्र

गीत सुन्दर है । पर, इसका अतिम अश ही सब से बडा सत्य है । 'अछूत', 'दलित' या 'हरिजन' कहे जाने वाले इन करोडो मनुष्यो मे यदि स्वाभिमान जाग्रत हो जाय, यदि ये लोग अपनी शक्ति को जान ले, तो ये पशुओ से नीचा स्थान पाने के बदले समाज के मस्तक पर रत्न-की तरह शोभित हो । जब तक इनमे स्वय आत्म-बोध उत्पन्न नही होता, इनके सुधार या उद्धार का बाहरी प्रयत्न व्यर्थ है ।

इलादेवी

तो क्या हम लोगो का इनके क्षेत्र मे काम करने आना कुछ भी उप-योगी नही हो सकता ?

नवीन

काम करने कौन आता है इलादेवी ? दर्शक या मेहमान की तरह आकर दो मीठी बाते कह जाना तो कोई काम नही है ! यह तो प्रदर्शन है, मन समझाना है । मै इन लोगो को मानव-समाज से अलग करके देखने के विरुद्ध हूँ । मुँह से 'हरिजन' कहकर इनका आदर करने वाले और आचरण मे इनसे बाल-बाल बचकर रहने वाले कई नुमाइशी

समाजसेवक इन्हे एक अलग और नीचे समुदाय के रूप ही मे देखते है। दूसरी ओर, इन्हे अपने ही वर्ग मे कुछ ऐसे नेता भी मिल जाते है, जो इन्हे 'दलित' कहलाने को विवश करके इनके नाम पर शासन मे कुछ क्षुद्र विशेषाधिकारो के टुकडे अपने नेतृत्व के उपभोग के लिए माँगा करते है, ठीक उसी तरह, जिस तरह गायो को लूली-लँगडी बनाए रह-कर कुछ भिखारी उनके सहारे राहगीरो से भीख माँगा करते है । मै इन सब चेष्टाओ को देखकर व्यथित हो उठता हूँ ।

उपेन्द्रनाथ

आखिर, इनके और इनकी सहायता के कार्य के सम्बन्ध मे आपका दृष्टिकोण क्या है ? जरा और विस्तार से बताने का कष्ट कीजिए ।

नवीन

मै चाहता हूँ कि ये स्वय और सारा मनुष्य-समाज इन्हे सामान्य मनुष्य समझे। भावना, चिन्तन, भाषा और आचरण मे कोई इनके साथ जरा-भी भेदभाव का अनुभव न करे। ये स्वय भी अपने को सबके साथ सदा अभिन्न समझे। इस अभिन्नता का आधार राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता हो, किसी की उदारता या उपकार-भावना नही। अस्पतालो मे रोगियो को स्वच्छ रखने वाले डाक्टरो और नर्सो और घरो मे बच्चो का पाखाना और पेशाब साफ करने वाली माताओं-के समान ही इनकी भी प्रतिष्ठा हो। यदि सब से कठिन और सब से आवश्यक सेवाकार्य करने वाले इन लोगो का अपमान करना हम लोग न छोडे, तो इनका यह कर्तव्य होना चाहिए कि ये दृढता से हमे सामू-हिक चेतावनी दे और नियत समय के अन्दर हमारा व्यवहार ठीक न होने-पर, हम लोगो से पूर्ण असहयोग करे, अपने अधिकारो की प्राप्ति के लिए अटल सत्याग्रह करे। मुझे विश्वास है कि सगठित होकर प्रयत्न करने पर ये कुछ ही दिनो मे अपने को उच्च समझने वाले हृदयहीन और अत्याचारी समाज की अक्ल ठिकाने ला दे सकते है।

इला

पर, क्या इनमे ये भावनाएँ पैदा करने के लिए हम लोगो का इन लोगो के मुहल्लो मे आना आवश्यक नही है ?

नवीन

इस तरह नही । इससे तो भेद-भाव कायम ही रहेगा । हम लोग, कुछ क्षणो के लिए आकर, या तो इन्हे पीडित समझ कर इन पर दया दिखा जाया करेगे, छोटा समझकर इन्हे कुछ उपदेश दे जाया करेंगे, या, इनके प्रति किए गए अन्यायो की प्रतिक्रिया के रूप मे, इन्हे आदर के साथ सिर पर चढाकर इनकी कुछ स्तुति, प्रशसा या खुशामद कर जाया करेगे ।

इला

आखिर, आप इनके लिए क्या करने की आवश्यकता समझते है ?

नवीन

आवश्यकता तन्मयता और अभिन्नता की है, निस्सकोच होकर स्वाभाविक रूप मे यहाँ आने-जाने और इनसे मिलने-जुलने की है; उसी तरह, जिस तरह हम लोग आपस मे मिलते-जुलते हैं । मिलने-जुलने से भी अधिक इनके साथ-साथ रहने और साथ-साथ काम करने की जरूरत है । इसमे प्रदर्शन की या दल बनाकर गाते हुए आने की कोई आवश्यकता नही है । यदि हम लोगो मे से साहसी स्त्री-पुरुष इनके मुहल्लो-मे आकर इनके कुटुम्बियो की तरह इनके साथ मिल-जुलकर इनके घर-के काम-काज मे स्वाभाविक रूप से हाथ बँटाया करे और जब ये हमारे मुहल्लो मे सफाई के लिए आवे, तब भी इनके काम मे उसी निस्संकोच भाव से सहायक हुआ करे, तो इनमे समता का भाव शीघ्र ही जाग्रत हो जाय ।

उपेन्द्रनाथ

क्या यह आज की स्थिति मे व्यावहारिक है ?

नवीन

यदि हम यह नही कर सकते, तो हमे अपने को क्रांति का ईमानदार कार्यकर्ता समझने का कोई अधिकार नही है। इस योजना मे हमारी मानसिक दुर्बलता के सिवा और कोई बाधा नही है। शर्म और सकोच हमारे बिलकुल लचर बहाने है।

इला

आपने हम लोगों को, वास्तव मे, इस समस्या पर सोचने का साहस-पूर्ण और स्पष्ट दृष्टिकोण दिया है।

उपेन्द्र

तब क्यो न अभी से नवीनचन्द्र जी की योजना को कार्य-रूप मे परिणत करना शुरू कर दिया जाय ? मै तो इससे अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ।

गजेन्द्रसिंह

हाँ, ठीक तो है। ला तो रे बिहारी, जल्द जाकर पाँच जोडे डलिया-झाडू तो ले आ ! और देख, मुझे देखकर बडी-बडी डलिया-झाडू न ले आना। ये बाबू लोग और ये देवियाँ भी है ! इनके लिए तो छोटे-छोटे जोडो ही की जरूरत होगी। सोच क्या रहा है रे ? जाकर ले आ। समझा न हो, तो अच्छी तरह समझ ले; आज से हम लोग भी तेरा और तेरे बाप-दादो का काम किया करेंगे।

मायादेवी

ईश्वर पहलवान और विनोदी, दोनो, एक ही आदमी को एक साथ कभी न बनावे ! बीच मे आपका हँसी-मजाक और पहलवानी की डीग आनी ही चाहिए, चाहे गभीर से गभीर समस्याओं पर विचार क्यो न हो रहा हो !

गजेन्द्रसिंह

अच्छा जाने दीजिए ! हम अपना क्रियात्मक और प्रगतिशील प्रस्ताव वापस लेते है। मायादेवी की नाराजी के बादल घिरते देखकर अपने राम-

का विनोद, और व्यायाम के द्वारा प्राप्त डीलडौल का सकेत, दोनो, बिना छाते के बटोही की तरह किसी कोने मे छिपने को विवश है ।

नवीन

आपने गजेन्द्रसिह जी का विनोद नाहक भग कर दिया मायादेवी ! वह तो शुद्ध विनोद ही था और विनोद ही रहता । व्यावहारिक दृष्टि-से तो मै स्वयं ऐसी जल्दबाजी नही करने देता । उतावलापन प्रथम दर्शन मे बडा तेजस्वी मालूम होता है, पर उसमे स्थायित्व और गभीरता-का अभाव होता है । अस्वाभाविक रूप से, बिना गहराई से सोचे, कोई ऐसा कार्य तमाशे के तौर पर, अचानक एकदम शुरू कर देना ठीक नही होता, जिसे आगे निरन्तर करते रहने का निश्चय न कर लिया जाय ।

इला

भविष्य की कार्यशैली के विषय मे तो कुछ विचार प्रकट कीजिए ।

नवीन

भविष्य की कार्य-शैली के विषय मे तो आप लोग फिर गहराई से विचार कीजिएगा, मेरा पूर्ण सहयोग आपको सदा मिलता रहेगा, फिलहाल बिहारी की हलकी-सी मेहमानदारी स्वीकार करने मे तो किसी-को कोई आपत्ति न होनी चाहिए । इस नटखटपन के पुतले को आनन्द तब आता है, जब यह पेडो पर चढ-चढ कर फल गिराता है और नीचे वाले चुन-चुन कर खाते जाते है । चलिए, पिछवाडे चले और बिहारी-के इस आनन्द मे सम्मिलित हो ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

['हैपी होटेल' का एक भाग। सूट-बूट पहने हुए विनोदकुमार अकेला एक टेबल के सामने बैठा है। टेबल पर एक ओर एक समाचार-पत्र रखा हुआ है, दूसरी ओर चाय का एक प्याला, बिसकुटों की एक तश्तरी, सिगरेटों का एक डिब्बा और दियासलाइयों की एक डिब्बी। चाय बहुत गरम है। ठण्डी होने की प्रतीक्षा के अल्प समय में विनोद कुछ धीरे-धीरे एक सिगरेट पीता और सोचता है। कुछ देर बाद, बीच-बीच में सिगरेट को ओठों से हटाकर हाथ में अलग रखता, मुंह से सीटी बजाता, गुनगुनाता और अगला गान गाता है।]

गान

आशा का टूटे तार,
जीवन मे, फिर, क्या सार ?
सूना सारा ससार !
आशा का टूटे तार ?
हो जाय नष्ट पतवार,
हो तेज नदी की धार,
नौका का क्या आधार ?
हो जाय नष्ट पतवार !

[उक्त गान की समाप्ति होते ही गजेन्द्रसिंह का परिहास के स्वर मे अगला गान गाते हुए प्रवेश। विनोदकुमार सुनकर चौंक उठता है।]

गान

हो चाय गरम तैयार,
बिसकुट हो लज्ज़तदार,
फिर और न कुछ दरकार

हो चाय गरम तैयार !
मुँह मे हो एक सिगार,
टेबल पर हो अखबार,
दुख-चिन्ता सब बेकार,
मुँह मे हो एक सिगार !

विनोदकुमार

आओ भई गजेन्द्रसिंह, तुम खूब आ टपके !

गजेन्द्रसिंह

क्या कहा—'आ टपके' ! 'आ धमके' कहो, 'आ धमके' ! तुम भी यार विनोदकुमार, निरे चौखट ही रहे ! गजेन्द्रसिंह कोई छप्पर का छोटा-सा झीगुर थोडे ही है, जो कही महज आ टपके। हाँ, आ धमकने-मे अवश्य कुछ धमक मौजूद है। उससे जरूर थोडा-बहुत मतलब अदा हो सकता है हमारे कही पहुँचने का। और यह तो बताओ कि इस स्वर्ग-पुरी—इस 'हैपी हॅाटेल'—के इस स्वर्णिम एकान्त भाग मे तुम यह मरसिया क्यो पढ़ रहे थे ? चिन्ताओ और दुखो को भुलाने के सारे साधन सामने मौजूद है, फिर भी तुम यह दुख और चिन्ता का गाना क्यो गुनगुना रहे थे ? इससे तो हमारा गाना अधिक आनन्ददायक रहा।

विनोदकुमार

क्या बताऊँ भाई ! अब तो मैं हिम्मत हार गया, मेरी आशा का अतिम सूत्र भी टूट गया। सुषमादेवी ने भी मुझे निराश कर दिया।

[दोनों टेबल के सामने बैठते हैं।]

गजेन्द्रसिंह

भई वाह ! यह तुमने निराशा का क्या बेसुरा अलाप छेड दिया ? अपने राम का अनुभव तो यही है कि विशुद्ध प्रेम और स्वास्थ्यप्रद व्यायाम, दोनो मे निरन्तर साधना और अथक प्रयत्न करने वाला ही सफल होता है। युवक हो तुम, और युवको के शब्दकोष मे तो 'निराशा' नाम का

कोई शब्द ही न होना चाहिए।

विनोद

लेकिन, धैर्य की भी कोई सीमा हुआ करती है। शान्ता, सुशीला, विमला, इला और अन्त मे सुषमा, एक-के-बाद एक, सभी ने तो मुझे निराश कर दिया।

गजेन्द्र

तो क्या हुआ यार ! विष्णुसहस्रनाम की तरह कोई प्रेमसहस्रनाम तो अभी बन ही नही गया था। कुल—जमा पाँच ही नामो मे तुम इतने परेशान हो गए ! भ्रमो से भरे हुए इस ससार मे सच्ची जीवन-सगिनी पाने के लिए जितनी ठोकरे खानी पडे, थोडी ही है। और फिर, न जाने कब अचानक मनोरथ-सिद्धि हो जाय, इसका भी तो कोई ठिकाना नही ! "का जाने का रूप मे नारायण मिल जायँ !" सच्चे साधक-को अपनी साधना से अन्त तक विचलित न होना चाहिए। डटे रहना-ही निश्छल प्रेम की दुनिया की सबसे बडी साधना है, उसके गीत का ध्रुवपद है। बस डटे रहो मेरे शेर !

विनोद

तुम इतने निष्ठुर हो गजेन्द्रसिह ! हृदय की गभीर वेदना के साथ भी इस प्रकार विनोद कर सकते हो।

गजेन्द्र

बात निष्ठुरता की नही है, तटस्थता की है। यदि मनुष्य अपने जीवन के प्रति कुछ तटस्थ-वृत्ति धारण कर सके, तो वह देखे कि उसका जीवन एक बहुत बडाक मजा है। उसमे कई रोने के स्थल भी ऐसे है, जिन पर मजे मे अट्टहास किया जा सकता है। किन्तु, विनोद के इस विकट दर्शन-शास्त्र को तुम न समझ सकोगे। इसे छोडो। मै वास्तविक सहानुभूति और गंभीरता से तुम्हारे हृदय की बात सुनना चाहता हूँ। विश्वास करो कि मै एक निष्कपट मनुष्य हूँ। मुझसे कई मनुष्य निस्स-कोच होकर आप-बीती कह चुके है। तुम भी यदि अपना दुःख हलका

करना चाहो, तो खुले दिल से कह सकते हो। मुझसे कही हुई बात अपने आप से कही हुई बात की भाँति ही गुप्त बनी रहती है।

विनोद

मेरी कहानी दुर्भाग्य की कहानी है, भाई! जीवन के सुख-दुख-की सच्ची और स्थायी सगिनी पाने की सरल और स्वाभाविक इच्छा-ने मुझे बुरी तरह बरबाद कर दिया। कालेज के प्रथम दो वर्ष मैंने एक अनजान व्यक्ति की तरह बिताए। सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण होकर तृतीय वर्ष मे आया। साथी विद्यार्थियो की तरह विद्यार्थिनियो ने भी मेरा अभिनन्दन किया। सबका हार्दिक अभिनन्दन पाकर, मानो, मेरे जीवन-पथ पर शुद्ध सौन्दर्य और पवित्र प्रेम के फूलो की वर्षा हो गई। बस, उसी दिन से मेरा मन स्वर्ग के स्वप्न देखने लगा और मेरा स्वर्ग अन्त मे मूर्खो का स्वर्ग सिद्ध हुआ।

गजेन्द्र

मूर्खो का स्वर्ग! भई वाह! खूब कहा!

विनोद

तुम फिर हँसी पर उतर आए। सुनते चलो! मुझे तुम्हारी सहानुभूति चाहिए, हँसी नही! सबसे पहले शान्ता से मेरा परिचय हुआ। विवाह की कई महीनो की निरन्तर प्रार्थना के बाद, उसने कहा कि चूँकि मेरे मस्तिष्क की तरह मेरा शरीर स्वस्थ नही है, इसलिए वह मुझसे विवाह नही कर सकती। इस पर, मैंने जब तक व्यायामशाला मे प्रवेश करने का निश्चय किया, तब तक उसने कैलाशचन्द्र से विवाह कर लिया। दूसरी थी सुशीला। उसकी माता ने कहा कि वह चाहे मुझसे विवाह करने को तैयार हो भी जाय, पर, वह उसे मुझसे विवाह नही करने देगी, क्योकि उससे मेरी जाति नही मिलती थी। अपने निश्चय-के विरोध की आशका से उस वृद्धा ने आत्महत्या की स्थायी धमकी के रूप में अफीम की आधी छटाँक की एक गोली सुशीला को दिखाकर अपनी अटी मे निरन्तर रखना शुरू कर दिया। शीघ्र ही मुझे अनु-

भव हो गया कि माँ को खोकर मुझे पाने को सुशीला तैयार न थी ।

गजेन्द्र

ऐसी दकियानूसी बुढियो को तो पकड-पकडकर एकदम पाव-पाव-भर अफ़ीम खिला-खिलाकर फौरन् खत्म कर देना चाहिए । अच्छा, उसके बाद ?

विनोद

उसके बाद विमला । विमला के पिता ने कहा कि चूँकि उनके वश-मे पिछली दो पीढियो मे हमेशा 'आई० सी० एस०' ही दामाद होते चले आए है, इसलिए वह मुझ बी० ए० फाइनल के विद्यार्थी को दामाद नही बना सकते । बाप की इकलौती बेटी विमला, मुझसे विवाह करना चाहती तो थी, पर, पिता की सम्पत्ति को उसमे भी अधिक चाहती थी । उसने भी बाप का दिल तोडने मे इनकार कर दिया । उसके बाद इलादेवी के लिए मुझे जनसेवक बनना पडा, खादी के कपडे सिलवाने पडे, हरिजनो-के मुहल्लो में जाना पडा, गावो की धूल फाँकनी पडी और न जाने क्या-क्या करना पडा । उनके माता-पिता की भी कम खुशामद नही करनी पडी । पर, एक दिन विवाह का जिक्र छेडते ही इलादेवी ने मुझे बुरी तरह दुरदुरा दिया । कहने लगी—"क्या आप इसीलिए जनसेवक बने थे ? बगलाभगत कही के !"

गजेन्द्र

भई वाह रे प्रेम और विवाह के भोदू ! इलादेवी के द्वार पर भी जा पहुँचे ! वह तो अपने प्रेम-और-विवाह-विरोधी विचारो के लिए बहुत दिनो से नगर मे प्रसिद्ध थी ! अच्छा फिर ?

विनोद

अन्त मे सुषमा को पाने का यत्न किया । उसके घर के वातावरण-के अनुरूप बनने के लिए फिर से फ़ेशनेबल सूट-बूट से लैस हुआ । क्रमशः वह और उसके माता-पिता सब मेरे अनुकूल नज़र आने लगे । उनके घर

बहुधा मेरा निमत्रण होने लगा, मैं भी उन्हे निमत्रण देने लगा। आशा हुई कि अबकी बार बेडा अवश्य पार हो जायगा और मैं अविवाहितो से विवाहितो की कोटि मे आ जाऊँगा। पर, एक दिन, मैं दुर्भाग्य का मारा कुछ इसी तरह खुले दिल की बातचीत सुषमा से भी कर बैठा। उस दिन वह न जाने किस गहरे विचार मे थी। यह सुनने के बाद कि मैं चार-चार स्थानो से ठोकरे खाकर उसके द्वार पर पहुँचा हूँ, वह भी एक-दम कुछ सनक-सी गई। कहने लगी—"मुझे तुम्हारी इन कहानियो पर विश्वास नही होता। दाल मे कुछ काला नजर आता है। और कोई खास कारण होगा किसी के भी तुम्हारा विवाह का प्रस्ताव स्वीकार न करने का। तुममे कोई विशेष दोष या दुर्गुण होगा।" हर चन्द समझाया कि—"और कोई ऐसा कारण न था। मुझ पर विश्वास करो, मैं बिल-कुल निर्दोष हूँ।" पर, उस वज्रहृदय सुषमा ने एक न सुनी। एकदम अपनी अस्वीकृति ऐसे दे दी, जैसे वह इसके लिए पहले ही से तैयार बैठी थी।

गजेन्द्रसिंह

हो, यार, तुम वास्तव मे भाग्यहीन!

विनोदकुमार

इस भाग्यहीनता का भी कोई ठिकाना है! इन नासमझ, साहस-हीन, अस्थिरचित्त, आदर्शवादी और सनकी लडकियो के पीछे मेरे कालेज-के दो वर्ष बिलकुल बरबाद हो गए। एक-एक वर्ष की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने मे दो-दो वर्ष लग गए। और असफलता के उन पाँच-पाँच भीषण आघातो के बाद मैं आज अपने को बिलकुल हतबुद्धि अनुभव कर रहा हूँ। मैं तो अपने जीवन ही से निराश हो गया हूँ।

गजेन्द्र

यह तो परले सिरे की साहसहीनता है। तुम—जैसे अण्डर-ग्रेज्युएट से तो एक गँवार ही अच्छा, जो यह जानता है कि सच्चे प्रेम की पकड़ वो ऊँट की पकड से भी मजबूत होनी चाहिए, उस पकड को जीवन मे

केवल एक ही जगह बैठना चाहिए और फिर विवाह के बाद ही खुलना चाहिए। याद रखो, मित्र, विशुद्ध प्रेम मे स्थल-परिवर्तन असफलता का निश्चित कारण होता है। प्रेम की साधना का आरम्भ और अन्त दोनो एक ही साध्य को लेकर होने चाहिए। अपने राम के जीवन से तो इस विषय मे ससार के बहुत-से प्रेमी आदर्श-पाठ सीख सकते है! यदि कहो, तो सुनावे हम भी अपनी आप-बीती।

विनोद

अवश्य सुनाओ।

गजेन्द्र

बिलकुल सीधी-सादी, स्वच्छ और स्वस्थ प्रेम-कहानी है। केवल एक है यह गजेन्द्रसिह और केवल एक है वह मायादेवी! नाटक मे दृश्य-परिवर्तन तो कई होते है, पर, नायक और नायिका अन्त तक वही रहते है और उनका पवित्र प्रेम चिरस्थायी रहता है। प्रथम परिचय के कुछ दिन बाद ही मायादेवी ने हमसे कहा कि हिन्दुस्तान के युवको का शारीरिक स्वास्थ्य आजकल बुरी तरह गिर रहा है। बस, अपने राम सकेत समझकर फौरन स्वास्थ्यप्रद व्यायाम मे जुट पड़े। और आज दुनिया जानती है कि हम अपने आस-पास के क्षेत्रो के गामा है, सुशिक्षित और सुसस्कृत गामा!

विनोद

अच्छा, तो यह कहिए कि आपके प्रेम ही मे से आपका व्यायाम और स्वास्थ्य निकला है।

गजेन्द्र

केवल व्यायाम ही नही, विनोद भी। एक दिन मायादेवी ने अपनी एक मनहूस सहेली से कहा कि इन दिनो ससार से ज़िदादिली उठती जा रही है, मजाक़ की जगह मनहूसियत लेती जा रही है, सजीव और सभ्य विनोद तो कोई जानता ही नही! चलते-फिरते हमने यह वाक्य सुन

लिया और आज सारा शहर हमारे सभ्य और सजीव हँसी-मजाक का कायल है। क्यो है न ?

विनोद

क्यो नही ! पर, इसका साराश बडा मनोरजक है। इससे यह सिद्ध होता है कि तुम जो कुछ भी हो, हो मायादेवी ही के बनाए हुए !

गजेन्द्र

अच्छा, आगे सुनो ! और भी मजेदार बाते है। मायादेवी ने अपनी एक फिसड्डी साथिन से एक दिन कहा कि इस देश मे उच्च-शिक्षा-का बडा अभाव है। अपने राम कालेज मे प्रविष्ट तो हो गए थे, पर, पढाई मे दिल नही लग रहा था। उनका यह आक्षेप हृदय मे चुभ गया। जुट गए पढाई मे। बी० ए० मे कम-से-कम सेकण्ड-क्लास तो लेकर ही छोड़ा। पर, जब स्वय मायादेवी ने जनसेवा के कार्यो मे व्यसस्त हो जाने के फलस्वरूप इटरमीजिएट मे फेल होते-ही कहा कि पाश्चात्य शिक्षा इस देश के लिए घातक है और ज़ोरो से जन-आदोलन मे पड गई, तब अपने राम ने भी एम० ए० को धता बताई और उसी आन्दोलन मे जुट गए। मायादेवी से दूनी सजा काटने के बाद जब जेल से छूटे, तो एक दिन सिनेमा देखते समय वह कहने लगी कि—"सिनेमा-ऐक्टिग मे सभ्य और शिक्षित युवक-युवतियो को भाग लेना चाहिए। तभी सिनेमा-क्षेत्र का सुधार होगा।" यह सुनना था कि हमने, हम दोनो को जगह देने के सम्बन्ध मे, चित्रपट-निर्माताओ से पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया।

विनोद

अच्छा ! सिनेमा-क्षेत्र मे भी !

गजेन्द्र

अजी, आगे तो सुनो ! इस बीच मायादेवी की इलादेवी से घनिष्ठता बढ़ गई। उन्होने उन्हे सनका दिया कि—"सिनेमा-क्षेत्र की गन्दगी साफ करने से तो अछूतो का अछूतपन मिटाना अधिक आवश्यक है।"

बस, फिर क्या था, इलादेवी के साथ मायादेवी और मायादेवी के साथ हम भिड गए हरिजन उद्धार मे ! इधर एक और दिल्लगी हुई । सब जानते है कि इलादेवी और नवीनचन्द्र दोनो इस सिद्धान्त के प्रचारक है कि भारत के युवक-युवतियो को प्रेम, विवाह और घर-गृहस्थी की सकीर्ण सीमा से मुक्त रहकर जन-सेवा मे जीवन लगाना चाहिए । उनसे प्राय: मिलते रहने के कारण उनका रग मायादेवी पर भी चढने लगा है और वह अब कहने लगी है कि वह भी प्रेम और विवाह की स्वार्थपूर्ण परिपाटी-को ठुकराकर आजीवन अविवाहित रहकर ही देश-सेवा करेगी ।

विनोद

फिर तुम ?

गजेन्द्र

हम ? हम भी उधर ही है, जिधर मायादेवी है । हमने भी घोषणा कर दी है कि प्रेम भी केवल मायादेवी से था और विवाह भी मायादेवी ही से करते ! पर, अब जब उन्होने इन दोनो बातो को तिलांजलि दे दी है, तब हम भी, पवित्र प्रेम के साधक के रूप मे, इन दोनो से बिल-कुल हाथ धोने को तैयार है ।

विनोद

शाबास, पट्ठे ! तब तो तुम भी क्रान्तिकारी नेताओ में गिने जाने लगोगे ।

गजेन्द्र

छिश, गजेन्द्रसिह न तो क्रान्तिकारी हो सकते है और न नेता ! वह तो एक विशुद्ध प्रेमी और एक अत्यन्त नगण्य समाजसेवक के सिवा और कुछ कभी नही बन सकते । इस निराशा मे भी स्पष्ट आशा है । जब तक मायादेवी किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम या विवाह न करे, गजेन्द्र-सिह उनकी आशा नही छोड सकते । सभव है, किसी दिन मायादेवी-पर यह अतिम सनक सवार हो कि प्रेम और विवाह इस व्यावहारिक ससार मे अनिवार्य है । तब तो, हमे दृढ विश्वास है कि, हमारे सदा साथ देने के इतिहास से वह अवश्य प्रसन्न और प्रभावित होगी । जीवन-

के उस सर्वोच्च शिखर पर भी हमारे सिवा और कोई उनका जीवन-सगी नही बन सकेगा !

विनोद

तब तो, मित्र, तुम बडे भाग्यशाली हो।

गजेन्द्र

ऐसा भाग्यशाली तो कोई भी हो सकता है, बशर्ते कि वह सच्चा प्रेमी हो। तुमने, मित्र, सच्चे हृदय से किसी एक से कभी पवित्र प्रेम किया ही नही। तुम्हे केवल एक ही धुन रही—किसी तरह पत्नी पा लेने की। उसी धुन मे तुम एक के बाद दूसरे स्थान से निराश हो-होकर एक के बाद दूसरे स्थान पर जल्द-जल्द प्रयत्न पर प्रयत्न करते गए। धैर्य की तुममे इतनी कमी रही कि तुमने हमेशा पहली "नही" को अतिम "नही" समझा। यहाँ तो अतिम "नही मे से भी हाँ" निकलवाने की हिम्मत रखते है! इस गजेन्द्रसिह को भले ही तुम निरा-विनोदी या कोरा पहलवान समझो, पर, वह प्रेम और विवाह के सबन्ध-मे तुम्हारी तरह यह अस्थिरता, यह जगह-जगह की सौदागरी पसन्द नही करता, इसीलिए उसकी आशा का सूत्र दृढ है, अटूट है।

विनोद

अच्छा, तो, तुम मुझे अब क्या करने की सलाह देते हो ?

गजेन्द्र

तुमने जगह-जगह ठोकरे खा-खाकर इस क्षेत्र मे अपना बाजार-भाव इस बुरी तरह गिरा लिया है कि मै तुम्हे कुछ समय तक प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे बिलकुल उदासीन, मौन और निष्क्रिय बने रहने-की सलाह देना आवश्यक समझता हूँ। तुम इस विषय की ओर से अपना मुँह बिलकुल मोड लो। पर, वैसे हमेशा बिलकुल मस्त रहो, प्रसन्न रहो, निश्चिन्त रहो। स्वास्थ्य बनाओ। खूब व्यायाम किया करो। सबसे खुशमिज़ाजी के साथ मिलो-जुलो। पुरानी बातो के कारण किसी-पर जरा भी नाराज न रहो। उत्साह, हर्ष और नवीनता के साथ ससार-

मे नया प्रवेश करो। किसी दिन अचानक सुअवसर तुम्हारे सामने छप्पर फाडकर आ गिरेगा। कोई समानशील लडकी सामने आ ही जायगी। उस समय तुम दृढता, स्थिरता और समझदारी से काम लेना। अपने हृदय को टटोलकर देखना। यदि उसमे उसके प्रति वास्तविक और पवित्र प्रेम होगा और तुम उसीके नाम पर जमकर रह जाओगे, तो निरन्तर साधना के बाद किसी न किसी दिन, तुम उसे अपने जीवन मे निकटतम सहचरी के रूप मे अवश्य पा लोगे।

विनोद

सच कह रहे हो, मित्र! तुमने जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण बदल दिया है, उसके प्रति मेरा उत्साह काफी बढा दिया है। तुमने विवाह और प्रेम के प्रति मेरी भ्रान्त धारणा को भी निर्मूल कर दिया है। मै तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। मगर, यह देखो, बातो ही बातो मे चाय बिलकुल ठडी हो गई। दूसरे कप मँगाता हूँ। तुम्हारी बातो का-सा मजा बेचारी चाय मे कहाँ से मिल सकता है? फिर भी, जब होटेल के इस कूचे मे आ ही निकले है, तब चाय को भी सनाथ करते चलना चाहिए। [ज़ोर से] बाय, दो कप और! जल्द! गरम!

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[शान्तिस्वरूप के बँगले का बरामदा। कुछ बेंत के मूढे रखे हैं। उनमें से दो पर इलादेवी और सुषमादेवी बैठी हैं। दोपहर के भोजन का समय।]

सुषमादेवी

मेरी कितनी बडी धृष्टता थी इला—बहन कि मै तुम्हे समझा-बुझाकर विवाह और प्रेम के सासारिक मार्ग पर लाना चाहती थी। मै जिसे तुम्हारी सनक समझती थी, वह तो तुम्हारी साधना निकली। तुम अपने व्रत पर प्रतिक्षण दृढ होती गई। पीडितो की सेवा के लिए तुमने क्या नही छोडा। प्रेम की मनुहारो का स्वर्ग छोडा, विवाहित जीवन का मोह छोडा, एम० ए० की शिक्षा की महत्त्वाकाक्षा छोडी। तुम्हारे सम्पर्क से मेरे जीवन मे भी क्रमश: परिवर्तन होता गया और अन्त मे तुमने मुझे अपनी ओर बडे वेग से खीच लिया। अब मुझे अपने निरन्तर पथ-प्रदर्शन द्वारा अपने मार्ग पर अन्त तक अविरत रूप-मे चलने की क्षमता दो।

इलादेवी

क्षमता तो मुझमे भी नही है, बहन, केवल कुछ विनम्र प्रयत्न है। मेरी झूठी प्रशसा तुम फिर कभी न करना। उच्च आदर्श के मार्ग पर चलते हुए भी आखिर हम लोग है तो मनुष्य ही। जब तक मनुष्य-का जीवन समाप्त न हो जाय, उसकी अधिक प्रशसा न करनी चाहिए। कौन कह सकता है कि जीवन के अन्तिम-क्षण के पहले ही किसी दिन उसका सहसा पतन न हो जायगा? मेरे प्रयत्नो की वास्तविक प्रेरणा-से तुम परिचित हो। मेरी भावुकतामयी सनक को व्यावहारिक उच्च

आदर्श का रूप देने का श्रेय नवीनचन्द्र जी के पथ-प्रदर्शन को है। उनकी बौद्धिकता यदि मेरी पथ-प्रदर्शक न बनी होती, तो मेरी सनक सनक ही बनी रहती; साधना की ओर अग्रसर होने का अवसर उसे कभी न मिलता।

सुषमा

नवीन जी तो मेरे आदर्श के आदर्श है। उनकी महत्ता मेरी प्रशसा की पहुँच के परे है। उनके अनुसरण की शक्ति मुझमे कहाँ है? वह तो तुम्ही कर सकती हो। तुम्हारा अनुसरण करने से उनका जितना अनुसरण हो जाय, उतने से अधिक की पात्रता मुझमे नही है। मेरा निकटतम आदर्श तो तुम्ही हो। मुझे तो अपने ही पीछे चलने दो। यही गौरव मेरे लिए बहुत है।

इला

नकल से असल की आवश्यकता की पूर्ति नही हो सकती। हम लोगो के आदर्श की प्रेरक शक्ति है नवीनचन्द्र जी। हम सबको उन्ही-से पथ-प्रदर्शन पाने का यत्न करना चाहिए। उनके सुयोग्य नेतृत्व मे कुछ युवक और युवतियाँ, विवाह, प्रेम, घर-गृहस्थी और क्षुद्र स्वार्थ के जीवन-से अलग रहकर, आजीवन जनता की यथाशक्ति सेवा करे—बस, यही, सबकी विनम्र साधना होनी चाहिए।

सुषमा

उनके नेतृत्व के आगे सभी का मस्तक सम्मान से नत है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नेता होते हुए भी वह एक साधारण स्वयसेवक से भी अधिक नम्र है। उन-जैसा नेता पाकर युवको और युवतियो का कोई भी समुदाय गर्व कर सकता है। पर, यह मै फिर कहती हूँ कि मेरे लिए तो तुम्हारा आदर्श ही निकटतर है। तुम्हारा अनुसरण करके ही मै उनके लक्ष्य की ओर चल सकूँगी। तुम्हारे अनुसरण की प्रेरणा मैने लम्बे और मूक आत्म-मन्थन के बाद एक दिन सहसा सूर्य के प्रकाश की प्रथम किरण की भाँति पाई है।

इला

अच्छा, यह तो बताओ कि विनोदकुमार से आखिर तुम्हे किस प्रकार मुक्ति मिली ?

सुषमा

जिस दिन मैने यह निश्चय किया कि मुझे भी विवाह, प्रेम और गृहस्थी के जीवन का मार्ग छोडकर तुम्हारी ही भाँति साधनामय लोक-सेवा का व्रत लेना चाहिए, उसके दूसरे ही दिन विनोदकुमार ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। सभवत· अपने निष्कपट आत्मीय-भाव का परिचय देने और मेरी सहानुभूति उभारने के लिए उन्होने यह भी कह दिया कि चार लडकियो के द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाने के बाद उन्होने मेरी शरण ली है। मैं पहले ही अविवाहित रहने का निश्चय कर चुकी थी। उनका प्रस्ताव मुझे अस्वीकृत करना ही था, पर अपने स्वाभाविक सकोच और साहसहीनता के कारण मुझे किसी बहाने की आवश्यकता थी। और कुछ न सूझने पर मैंने उनके चारो स्थानो से निराश किए जाने मे उनके किसी दोप की आशका प्रकट करके उसे अस्वीकृत किया।

इला

यह तुमने अत्यन्त अनुचित किया। याद रखो बहन, सत्य ही ससार-मे सर्वश्रेष्ठ नीति है। असत्य से असख्य हानियाँ और अगणित उलझने पैदा हो सकती है। यदि तुमने उनसे सत्य बात कही होती, अपने जीवन-परिवर्तन के निश्चय को उनपर स्पष्ट रूप मे प्रकट किया होता, तो वह भी शायद हम लोगो के मार्ग पर आ जाते। अब सभवत इस लाछन-पूर्ण निराशा से उनका दिल इतना टूट जायगा कि वह या तो आत्मघात कर लेगे या दुर्व्यसनो मे फँस जायँगे अथवा चाहे जिस लडकी से जल्द-से जल्द विवाह-बन्धन मे बँधने के लिए आतुर हो उठेगे।

सुषमा

वास्तव मे मुझसे गलती हुई, बहन, ! मैं इसके लिए आत्म-ग्लानि-

का अनुभव करती हूँ । पर, विनोदकुमार पर इसका कोई बुरा प्रभाव नही पडा । मैने सुना है कि गजेन्द्रसिह जी ने उन्हें व्यायाम और बेफिक्री-के महामत्र की दीक्षा दे दी है। मै तुम्हे यह जता रखना आवश्यक समझती हूँ कि तुम इसकी आशा न रखना कि विनोदकुमार कभी तुम्हारे आदर्श को ग्रहण कर सकेगे । यह भले ही हो कि वे हम लोगो-से क्रुद्ध होकर किसी दिन हमारे विरुद्ध किसी षड्यन्त्र का सूत्रपात करे ।

[उपेन्द्रनाथ का प्रवेश]

इला

आइए, उपेन्द्रनाथ जी । [मूढे की ओर संकेत करके] बैठिए ! आप शायद भूल गए कि आपको आज यही भोजन करना था ? बडी देर कर ली ! आप भी भोजन के विषय मे लापरवाह होने लगे है । जरा ठहरिए, मै अभी अन्दर जाकर देखती हूँ ! यदि ठडा हो गया होगा, तो फिर गरम किए लेती हूँ ।

[गमनोद्यत होती है ।]

उपेन्द्रनाथ

ठहरिए, जरा सुनिए तो सही ! एक और भूखा प्राणी रास्ते पर खडा है ! पर, वह न तो स्वय ही भोजन करना चाहता है और न मुझे ही करने देना चाहता । मै रुक नही सकता ! केवल यही कहने आया हूँ कि आप लोग प्रतीक्षा न करे, भोजन कर लें ।

इला

यह कैसे हो सकता है ? कौन खडा है रास्ते पर ? आपको समय-का कोई खयाल नही ! इतनी देर मे तो आए है और यह कहने आए है कि भोजन न कर सकेगे । नवीनचन्द्रजी का अभी तक पता नही है । उन्हे भी इस समय हम लोगों के साथ ही भोजन करना था । पर, उनके भोजन का तो कभी कोई ठिकाना ही नही रहा करता । आ सके, तो आ सके; न आ सके, तो न आ सके । भोजन का उनके जीवन में सदा

अन्तिम स्थान ही रहा ! आपको तो इस विषय मे उनका अनुसरण न करना चाहिए ।

उपेन्द्रनाथ

नवीनचन्द्रजी ही तो खडे है रास्ते पर ! मुझे धीरे-धीरे उन्होने इतना अपना बना लिया है कि आज सुबह चार बजे मुझे अचानक घर-से उठाकर कहने लगे कि—"चलते हो रामपुर—गॉव की तरफ, तुम्हे वहॉ के किसानो से परिचित करा लाऊॅ !" मै विस्मित और कृतार्थ होकर उनके साथ चल दिया । गॉव मे मैने उन्हे आप लोगो के साथ भोजन करने के अपने वादे की याद दिलाई ।

सुषमा

बहुत समझिए कि गॉव मे पहुँचकर भी शहर मे भोजन करने के वादे की याद रह गई ।

उपेन्द्र

इस पर नवीन जी कहने लगे कि "मुझे भी तो वही भोजन करना है । भोजन के समय वापस पहुॅचना है, इसीलिए जल्द आए है ।" लौटते समय नगर की सीमा पर एक हरिजन ने सूचना दी कि जमना चौधराइन की तबीयत अचानक खराब हो गई है । सुनते ही हरिजन—मुहल्ले की ओर जाने लगे । मैने आग्रह किया कि आप लोगो को सूचना तो देते चले, जिससे आप प्रतीक्षा न करके भोजन कर ले ।

इला

ऐसी दशा मे हम लोग भोजन करेगी ! चलिए, हम भी जमना चौधराइन की तरफ चले । यह कैसी ज्यादती है नवीनचन्द्रजी की ! एक तो मुझे गॉव ले जाने की आवश्यकता न समझी, ऊपर मे इतनी हृदय-हीन समझते है ! चौधराइन की बीमारी का हाल सुनकर भी मै तो भोजन ही करती रहूॅ और वह इतनी दूर के हारे-थके और भूखे-प्यासे जाकर उनकी शुश्रूषा मे लग जावे ! यह कैसे हो सकता है ! [सुषमा-से] चलो बहन ! तुमने भी तो जान-बूझकर अपने लिए कष्टो ही का

सेवा-पथ चुन लिया है ! [सब का प्रस्थान]

[नेपथ्य से शान्तिस्वरूप की आवाज़ आती है—"इला ! इला बेटी ! क्यों देर कर रही हो बेटी !" तथा वह प्रवेश करते हैं ।]

शान्तिस्वरूप

उमा ! उमादेवी !

[उमादेवी का नेपथ्य से "क्या है जी ? आ रही हूँ !" कहकर प्रवेश ।]

उमादेवी

क्यों ? क्या हुआ ?

शान्तिस्वरूप

हुआ क्या ? लो देखो ! बरामदा खाली है । उड गईं चिडियाँ ! अब पडा रहेगा खाना ! कितनी बार कह चुका हूँ कि लड़की को देख पाते ही झटपट आग्रह करके दो ग्रास खिला दिया करो । उसका कोई ठिकाना नही । न मालूम, कब भूखी ही घर मे निकल पडे और फिर देर तक न लौटे !

उमा

नन्ही बच्ची तो है ही नहीं तुम्हारी बेटी, जिसे पकडकर जबर्दस्ती खिला दूँ । सुबह से कितनी बार कह चुकी हूँ कि "खाना तो पेट मे डाल ले", पर, सुषमा, उपेन्द्र, नवीन, एक के बाद एक, जब तक उसके सभी अतिथि न आ जाते, वह अकेली कैसे भोजन कर सकती थी ? अब देखती हूँ कि और तो कोई है ही नही, सुषमा और इला भी गॉठ की गायब हो गईं । अब तो इस बेटी के मारे मेरी सचमुच नाक में दम आ गई है ! खूब बिगाडा है तुमने इसे ! [खिन्न होकर मूढे पर बैठती है । शान्तिस्वरूप भी दूसरे मूढे पर बैठते हैं]

शान्तिस्वरूप

इसे तुम बिगडना कहती हो ! यह हमारा सौभाग्य है कि इला-जैसी लडकी हमारे घर मे उत्पन्न हुई ! तुम समय के परिवर्तन का सम्मान

नही करती, यह तुम्हारी हठधर्मी है। मै जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय मे इला-के लिए प्रेम है, पर, तुमने उसे अपने जनसेवा के किसी सत्कार्य मे कभी कोई प्रोत्साहन नही दिया। तुम्हारी नाराजी न सह सकने की अपनी दुर्बलता के कारण मैने भी उसे सदा निरुत्साहित ही किया। फिर भी, तुम कहती हो कि मैने उसे बिगाडा है। यह तुम्हारा भ्रम है। उसे जो कुछ बिगाडा या बनाया है, उसके युग ने बिगाडा या बनाया है, उसके युग की समस्याओ, विचारधाराओ और महापुरुषो ने बिगाडा या बनाया है।

उमा

तुम उसे और भी सिर पर चढाना शुरू कर दो। तुम्हे रोक ही कौन सकता है ?

[एक पैर से लँगडाते हुए प्रकाशचन्द्र का प्रवेश।]

प्रकाशचन्द्र

[रुदन के स्वर में] बिहारी हमे पटककर भाग गया। पैर म बडा दर्द हो रहा है।

शान्तिस्वरूप

कैसे पटक दिया ? बता तो सही, रो मत।

उमा

कह तो रहा है। वही भगी का लडका बिहारी इसे पटककर भाग गया है। कितनी बार इला से कहा कि उसे यहाँ न लाया कर और कितनी बार इस अभागे को समझाया कि उसके साथ न खेला कर। पर, मेरी सुनता कौन है ? लडकी खुद बिगडी, सो तो बिगड़ी ही, इस लड़के को भी बिगाड दिया। **[प्रकाश का रुदन]**

शान्तिस्वरूप

आखिर, हुआ क्या ? कैसे पटककर भाग गया ? कुछ बताएगा भी या रोता ही रहेगा।

प्रकाश

[रुदन के स्वर में] बिहारी ने कहा—मेरे कधे पर चढकर फूल

तोड़। मैं फूल तोड रहा था। एक आदमी ने बिहारी को सडक से देखा। बोला—तेरी माँ की तबीयत खराब हो गई। बिहारी मुझे जल्दी से उतारकर भागा। मैं गिर पडा। पैर मे चोट लग गई।

शान्तिस्वरूप

जब उसकी माँ बीमार हो गई, तब वह तुझे छोडकर भागे नही, तो क्या करे? तू क्यो चढा था उसके कधे पर। अच्छा, रो मत, मुलुआ-को लेकर डाक्टर रामलाल के पास चला जा। दवा लगा देगे। जा बेटा! ठीक हो जायगा।

[प्रकाश लँगड़ाता हुआ जाता है।]

उमा

तुम्हारी लडकी के मारे मेरा जीना दूभर हुआ जा रहा है। जाति और पडोस के सब स्त्री-पुरुष टोकते है कि क्या इसे जिन्दगी-भर क्वारी ही रखेगी। मेहतरो के यहाँ जाने के कारण अलग बदनामी होती है। अब तो वह मेहतरो को यहाँ भी लाने लगी। तुम तो उसे डाटते ही नही। लडकी बिलकल बे-हाथ हुई जा रही है। आगे पढना भी छोड़ बैठी। दिन-रात इधर-उधर की झझटो ही मे लगी रहती है।

शान्तिस्वरूप

तुमने जीवन-भर मेरे और मेरी गृहस्थी के लिए जो कार्य किया है, उसके कारण मैने सदा तुम्हारा अकुश सहन किया। यह भी मुझे स्वीकार करना पड़ा कि लडकी भी, मेरी ही तरह, तुम्हारे अनुशासन मे रहे। तुम्हे प्रसन्न रखने को मै उसे अनेक बार बुरा-भला भी कहा करता हूँ। पर, हृदय की बात तुम्हें बताऊँ उमादेवी! मै इला का आदर करता हूँ। पिता होते हुए भी मेरे हृदय मे उसके लिए श्रद्धा है। उसके उच्च आदर्शो के सामने मन-ही-मन मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ। पर, क्या करू! उसका पिता होने के कारण मे उसके प्रति खुलकर अपने हृदय-का अपार आदर प्रकट नही कर सकता! मुझमे इतना साहस नही है, मै दुर्बल हूँ।

उमा

बस, इसकी और कसर है ! किसी दिन खुलकर उसके चरणो मे अपना मस्तक टेक देना ! फिर तो लडकी और भी निरकुश हो जायगी !

शान्तिस्वरूप

जरा उसके साथ न्याय करो उमादेवी ! शान्त चित्त से सोचो। मैंने और तुमने छोटी उम्र से गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश करके अब तक कितने सुखो का उपभोग किया है ! अभी तक सुख से रहने की हमारी दुर्बलता ज्यों-की-त्यो बनी हुई है। और उधर उस लडकी को देखो। यह उसकी अच्छा खाने, अच्छा पहनने और सुख से रहने की उम्र है, पर, उसने अभी से एक तपस्विनी का जीवन अपना लिया है ! और तारीफ यह है कि वह एक क्षण के लिए भी यह अनुभव नही करती कि उसकी यह तपस्या पुराण और इतिहास की प्रसिद्ध विभूतियो की तपस्या-से भी बढ़ी-चढी है। वे लोग या तो देवता थे, या महापुरुष, ससार से दूर, ऊपर या अलग। उस दशा मे उनकी तपस्या इतनी प्रशसनीय नही मानी जा सकती।

उमा

तब तो तुम्हारी लडकी की तपस्या ही सबसे बढकर मानी जानी चाहिए !

शान्तिस्वरूप

इसमे क्या सन्देह है ! इला की विशेषता यह है कि वह एक साधारण मनुष्य के सिवा और कुछ नही है। एक दुर्बल मनुष्य की तरह ससार के असख्य प्रलोभनो के बीच मे रहकर भी वह उनसे परास्त नही हो रही है। इसलिए, वह विशेष श्रद्धा की पात्र है। और, इस युग मे अकेली हमारी लडकी ही ऐसी नही है। कई युवको और युवतियो ने इसी प्रकार पीडित, शोषित और दलित जनता की सेवा मे अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है, ससार के सारे सुखो को छोड रखा है। यह युग पिछले सब युगो से महान् है। इसने ऐतिहासिक और पौराणिक

विभूतियो से भी महान् अनेक विभूतियाँ, अज्ञात रूप मे, हमारे ही बीच-मे, सामान्य व्यक्तियो के घरो मे, उत्पन्न कर रखी है। हमारे बीच आज ऐसे अनेक त्यागी और तपस्वी तरुण और तरुणियाँ है, जो महान् होते हुए भी अपनी महत्ता का अणु-मात्र भी अनुभव नही करते। यह उनकी सबसे बडी विशेषता है। वे श्रद्धा के पात्र होते हुए भी श्रद्धा की अपेक्षा नही करते। हमे उनका वास्तविक मूल्याक न करना चाहिए। हमे अब अपना दृष्टिकोण भी बदल देना चाहिए और इस युग को श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम करना चाहिए। हमें अपने को गौरवान्वित समझना चाहिए कि हम इस युग मे जी रहे है।

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[नदी के किनारे की भूमि पर फैली हुई हरियाली। दोपहर के बाद का समय। नवीनचन्द्र हाथ मे बाँसुरी लिए श्रान्त भाव से प्रवेश करता है। हरी दूब पर लेटकर अगला गान गाता और बीच-बीच में बाँसुरी बजाता है।]

गान

लघु प्रसून-सा मेरा जीवन,
तेरे अर्पण, तेरे अर्पण,
लघु प्रसून-सा मेरा जीवन !
तू पीडित-शोषित जनता के
बृहद् रूप मे व्याप्त जनार्दन !
तेरी करुण मूर्ति के व्यञ्जक—
उनके आँसू, उनके श्रम-कण !
लघु प्रसून-सा मेरा जीवन,
तेरे अर्पण, तेरे अर्पण।
जाति-धर्म-बन्धन-सीमा मे
रुद्ध नही तेरा आराधन,
जड़ वैभव है असत्, सत्य तू,
हे जनता-मय, हे चिर-चेतन !
लघु प्रसून-सा मेरा जीवन,
तेरे अर्पण, तेरे अर्पण।

[गान और बाँसुरी बजाना रुकता है। पार्श्व से उपेन्द्रनाथ प्रवेश करता है।]

उपेन्द्रनाथ

छिपने वाले से ढूँढने वाला बलवान् होता है । लीजिए, मै यहाँ भी आ पहुँचा !

नवीनचन्द्र

[**उठकर बैठते हुए उपेन्द्र की ओर घूमकर**] आओ भाई उपेन्द्रनाथ, आओ बैठो ! मै तुमसे कैसे और कहाँ छिप सकता हूँ ? [**उपेन्द्रनाथ पास आकर बैठता है ।**] तुमने तो अपने अथक और अजस्र सहयोग-से मेरे जीवन को चारो ओर से व्याप्त कर लिया है । यदि मै तुम्हे सूचना दिए बिना ही इधर चला आता, तो केवल स्वय विश्राम और एकान्त प्राप्त करने के लिए ही नही, बल्कि, तुम्हे भी कुछ विश्राम और एकान्त देने के लिए । आखिर कभी-कभी तो तुम्हे भी दिन के अविरत कार्य के बीच मे एकान्त और विश्राम मिलना ही चाहिए ।

उपेन्द्र

मै सच कहता हूँ नवीनचन्द्र जी, हालत कुछ ऐसी हो गई है कि आपके अभाव मे एकान्त और विश्राम भी अब मुझे खाने को दौडते है । मैने प्रारम्भ मे यह नही सोचा था कि मेरे जीवन पर आपका इतना प्रभाव पड जायगा । अच्छा, क्या आप यह जानते है कि मै कब से दूर खडा हुआ आपका सगीत सुन रहा था ?

नवीन

जानता होता, तो क्या तुम्हे पास न बुलाता ? इतना निष्ठुर तो मै नही हूँ । अच्छा, यह लुका-छिपी तुमने कब और किससे सीखी ?

उपेन्द्र

लुका-छिपी की इसमे क्या बात है ? तन्मय सगीत और प्रगाढ निद्रा, इन दोनो के बीच मे क्या कभी कोई सहृदय व्यक्ति बाधा डाल सकता है ? आपकी तन्मयता भग न करने के विचार ही से मै इतनी देर तक दूर खडा रहकर सुनता रहा ।

नवीन

यह तो मुझे मालूम है कि यह स्थान तुम से छिपा नही है, पर, यह तो बताओ कि तुम्हे मेरे इस समय यहाँ होने की खबर कैसे मिली ?

उपेन्द्र

आपकी कोठरी के एक ताक मे पडी रहने वाली धूल से भरी हुई आपकी यह बाँसुरी जब सहसा कभी वहाँ नजर न आए, तो आपके अनुयायी अनायास यह अनुमान कर सकते है कि उनका नेता अपने अथक श्रम और निरन्तर सघर्ष से क्षण भर विरत होकर प्रकृति और सगीत-की गोद मे कुछ देर विश्राम करने चला गया है ।

नवीन

मेरी केवल यही दुर्बलता ऐसी है, जो मुझे प्रिय है और जिसके प्रकट हो जाने मे भी मुझे सकोच नही होता । क्या करूँ भाई, आखिर, मै भी इन्सान हूँ, बहुत दिनो तक लगातार काम मुझसे नही होता। सहसा किसी दिन प्रबल इच्छा हो उठती है कि दिन के बीच मे से कुछ विश्राम लेने इधर चला आऊँ । प्रकृति-प्रदर्शन और सगीत से मेरी लबी थकान भी कुछ क्षणो मे उतर जाती है ।

उपेन्द्र

पर्वत के हृदय से भी तो कभी-कभी निर्झर फूट निकलता है । यह आपकी दुर्बलता नही, आपकी सरस और सरल मानवता है । हम-जैसे दुर्बल प्राणियो का उत्साह तो इसी को देखकर टिक सकता है । जनता-की सेवा के कटकमय मार्ग पर चलने वाले अपने प्रिय नेता को यदि हम किसी भी दिन के बीच मे थककर जरा भी विश्राम लेते न देखे, निरन्तर श्रम और सघर्ष ही मे व्यस्त देखे, तो फिर हम लोग तो यह सोचकर निराश ही हो जाय कि इस मार्ग पर कदम रखना हम-जैसे साधारण मानवो का काम नही है । फिर तो आपका पथ मानवो का पथ न रहकर देवो, ऋषियो और सन्तो ही का पथ बन जाय ।

नवीन

यह तो ठीक है, पर, तुम इस हीन भावना को अपने हृदय से निकाल दो कि तुमने इत दुर्बल हो ! इस भ्रम को भी समाप्त कर दो कि मुझमें तुमसे अधिक क्षमता या विशेषता है। हम सब एक ही पथ के पथिक, साधारण मानव और सामान्य समानता के अधिकारी है। मैं अपनी दुर्बलताओं को तुमसे अधिक जानता हूँ, पर, उनसे सघर्ष करने-का बल भी मुझे अपने ही उच्च आदर्शो से मिलता रहता है। तुम्हें भी यह बल मिल सकता है। उच्चादर्श सूर्य के प्रकाश की भाँति हम सब मानवो की समान प्रेरणा और समान सम्पत्ति है ! जब तक हमारे पीछे उच्चादर्शो का बल है, महान् नैतिक मानवीय मूल्यो की प्रेरणा है तब तक हममे से एक भी दुर्बल, एक भी निराश नही रह सकता।

उपेन्द्र

यदि आप बुरा न माने तो एक बात कहूँ ! आप स्वय तो निराशा-से इतने दूर रहना चाहते है, पर, आप नही जानते कि आप अनजान मे किसी अन्य को कितना निराश कर रहे है !

नवीन

मै निराश कर रहा हूँ ? किसे ?

उपेन्द्र

माधवीदेवी को। अब तो उनके हृदय की वेदना एक खुला रहस्य बन चुकी है ! उनकी निराशा की कल्पना से मै विचलित हो उठता हूँ।

नवीन

[**खिन्न उच्छ्वास लेकर**] ये तो पुराने ढग के जीवन की बाते है। उस तरीके को तो हम लोग पीछे छोड आए है न ? फिर उसका मोह क्यों ? माधवीदेवी के लिए मुझे भी वास्तव मे बडा खेद है। इतनी बडी बौद्धिक शक्ति यदि विशुद्ध रूप मे सचमुच हम लोगो के लक्ष्य-साधन में सहायक हुई होती, तो जनता का कितना हित हुआ होता ! यदि उन्होने केवल लोकहित के उच्चादर्शों ही के लिए बलिदान किया होता,

तो मै आज कितना भाग्यशाली होता ! पर, उन्होने मुझ रक्त-मास के तुच्छ प्राणी के लिए भी अपने हृदय मे मोह उत्पन्न होने दिया। बस, यही उनकी गलती हुई। इसी से उनका सारा त्याग और सारी योग्यता निष्फल हो गई ! यदि मैं उनके उस मोह को पनपने देता, तो अपने ही हाथो अपने आदर्शो को विनाश की चिता पर रख देता ! मै ऐसा नही कर सकता था भाई ! मनुष्य होते हुए भी मैं इतना दुर्बल सिद्ध नही हो सकता था, विशेषकर ऐसी तरुणी के प्रति, जिसके सम्बन्ध मे कभी भूलकर भी मेरा हृदय प्रेम की दुर्बलता अनुभव न करता हो।

उपेन्द्र

पर, आपने उन्हे अपने लोक-सेवा के कार्यो से एकदम अलग क्यो कर दिया ? उनका सहयोग लेने से क्यो इनकार कर दिया ? आपके सहयोग से, पीडित, शोषित और दलित जनता की सेवा करने के लिए वह कितनी तडपा करती है, बिलकुल अकेली और असहाय ! दुर्भाग्य की विडम्बना तो देखिए, जनता की सेवा के लिए उन्होने उधर अपने वैभव-सम्पन्न घर, माता-पिता और कुटुम्बियो को छोड दिया और इधर आपने उन्हे जन-सेवा का कोई अवसर, कोई प्रोत्साहन, कोई सहायता नही दी।

नवीन

तुम जानते ही हो कि उनका सेवा-भाव सात्त्विक नही था। वह जनसेवा के अवसर के साथ-साथ रक्त-मास के नवीनचन्द्र को भी चाहती थी। उनकी जनसेवाभावना मे उनकी दुर्बलता, उनका मोह भी मिला हुआ था। ऐसी दशा मे हम लोग उनसे कैसे सहयोग कर सकते थे ?

उपेन्द्र

उनका सारा स्वार्थत्याग, सारा कष्ट-सहन, सारा आत्म-बलिदान क्या केवल इसीलिए व्यर्थ हो गया कि उन्होने आपसे प्रेम करने की गलती की ? क्या इस गलती का दण्ड उन्हे यह मिलना चाहिए कि वह जनता की सेवा के कार्यो मे आपका जरा भी सहयोग और पथ-प्रदर्शन

न पा सके ? क्या उनका इतनी निष्ठुरता से बहिष्कार किया जाना चाहिए ? क्या उनकी गलती दुरुस्त करके उनकी शक्तियाँ जनता के हित मे इस्तेमाल नही की जा सकती ?

नवीन

यदि उनके आकर्षण, उनके मोह का विषय मेरे सिवा और कोई होता, तो मै अवश्य औरो की तरह उनको भी गुमराह होने से बचाने का प्रयत्न करता ।

उपेन्द्र

आखिर, आप उन्हे क्यो नही बचा सकते ?

नवीन

क्योकि उनकी दुर्बलता का कारण मै स्वय हूँ । ऐसी दशा मे मै उन्हे अपने और अपनी योजनाओ के सम्पर्क मे आने का अवसर कैसे दे सकता हूँ ? वह तो बारूद के ढेर के पास आग की चिनगारी को निमन्त्रित करना होगा ! उनके त्याग और बलिदान की मै कद्र करता हूँ, पर, वह शुद्ध और सात्त्विक नही है । इसीलिए, वह मेरे लिए, मेरे साथियो-के लिए और मेरे लक्ष्य-साधन के लिए अग्राह्य है । मुझे क्षमा करो भाई, मै यह जोखिम नही उठा सकता ! प्रेम और विवाह की दुर्बलता-को पनपने देना हमारे आदर्शो के विरुद्ध है, वह तो हमारे आदर्शो की जड पर कुठाराघात है ! हम सब से समझौता कर सकते है, इस दुर्बलता-मे नही ! और फिर स्वय मुझे लेकर कोई इस दुर्बलता का खेल खेलना चाहे और वह भी मेरी इच्छा के विरुद्ध, यह तो और भी असह्य है !

उपेन्द्र

अच्छी बात है । हिमालय की उच्चता और सुन्दरता के उपासको-के लिए उसकी कठोरता भी आदरणीय हो सकती है ! चलिए, अब चले ! इलादेवी और सुषमादेवी ने कही हमे ढूँढना शुरू न कर दिया हो ।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[माधवीदेवी के निवास-स्थान का एक भाग। सन्ध्या का समय। माधवी अकेली विषाद के स्वर मे अगला गान गा रही है। छोटे-से कमरे में सजावट के स्थान पर सादगी है। साधारण सस्ते ढंग की कुछ कुर्सियाँ रखी हैं।]

गान

निष्ठुर तुमने मुझे न जाना।
ऐ प्रस्तर के देव, द्वार पर
मैं थी केवल प्रेम-पुजारिन
अपनी महिमा के आसन से
तुमने समझा मुझे भिखारिन;
मेरे प्राणो के अणु-अणु मे
अर्पण का स्वर था दीवाना।
निष्ठुर, तुमने मुझे न जाना।
जिसने अगणित मनुजो के हित
इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतारा,
तुमने मदिरा या विष समझी
प्रेम-सुधा की निर्मल धारा,
इसी परख से मर्म जगत् के
जीवन का तुमने पहचाना।
निष्ठुर, तुमने मुझे न जाना।
जीवन की सारी आशाएँ
भस्म बनी आँखो के आगे,
अस्वीकृति के आघातो से
स्वप्न हुए सब नष्ट अभागे,

अब क्या है जीने मे मेरे ?
केवल रोकर दिवस बिताना ।
निष्ठुर, तुमने मुझे न जाना ।

[विनोदकुमार का प्रवेश]

विनोदकुमार

नमस्ते, माधवीदेवी !

माधवीदेवी

नमस्ते, विनोद जी ! आइए, बैठिए !

विनोद

[पास की कुर्सी पर बैठते हुए] क्षमा कीजिए, मैने आपके एकान्त-सगीत मे बाधा डाली ।

माधवी

सगीत कैसा ? वह तो एक वेदना का गीत था, केवल एक गुनगुनाहट, जिसे मैने यो ही याद कर लिया था ! आजकल कही जाने-आने को जी नही चाहता । घर मे अकेले पडे रहने का साथी ऐसे किसी गीत के सिवा कौन हो सकता है ? मै तो आजकल इस दुनिया से, मानो, कुछ अलग-सी हो गई हूँ । किसी के सुख और व्यस्तता मे हिस्सा बँटाने न जा सकने पर तो पश्चात्ताप नही होता, पर, किसी के दु ख या हानि की खबर पाकर भी जब मै उसे सान्त्वना देने नही जा पाती, तो मुझे वास्तव-मे बडा खेद होता है ।

विनोद

इससे आपके हृदय की गभीर मानवीय सहानुभूति व्यक्त होती है ।

माधवी

अच्छा, यह तो बताइए कि यह सुषमा का क्या किस्सा हुआ ! आपके साथ सुषमा के विवाह की सभावना को तो मैने इतना ध्रुव सत्य समझा था कि किसी भी क्षण निमत्रण-पत्र की आशा कर सकती थी । पर, अचानक यह सुनकर एक आघात-सा लगा कि उसने सहसा

इनकार कर दिया । मझे दुःख है कि मैं आपकी इस क्षति मे सहानुभूति प्रकट करने आपके घर न आ सकी, परिचित होने का इतना-सा कर्त्तव्य-पालन भी न कर सकी ।

विनोद

इस दृष्टि से भी पहले मुझीको आपके घर आना चाहिए था । आपकी निराशा, आपकी क्षति और आपका दुःख मेरी हानि से कही गभीरतर है । आपको तो, मुझे सुषमा की अस्वीकृति मिलने के पहले ही, स्वय कठोरतर आघात सहन करना पडा है ।

माधवी

दुःख से बढकर दुःख का रहस्य सब पर प्रकट हो जाना असह्य होता है । निराशा की आत्मग्लानि जब घर-घर प्रचारित होकर विश्वव्यापक बनना चाहती है, तब वह सकोचशील मनुष्य को आत्म-घात तक के लिए विवश कर देती है । पर, इस प्रचार के विष मे से एक अमृत भी निकलता है ।

विनोद

अमृत कैसा ?

माधवी

दुःख के समाचार के सर्वविदित हो जाने पर ही उसके जानने-वालो मे से उसी दुःख से दुःखी कोई व्यक्ति कभी आगे आकर वास्तविक सहानुभूति प्रकट करता है ।

विनोद

ठीक कहती है माधवी देवी ! सुख के ससार मे ईर्ष्या का राज्य है और दुःख की दुनिया मे सहानुभूति का । ईर्ष्या से मनुष्यो के हृदय एक दूसरे से दूर हटते है और सहानुभूति से वे परस्पर निकट आ जाते है ।

माधवी

किन्तु, इससे काम नही चलता विनोद जी ! निराशा के गहरे

आघात से दिल ही बैठ जाता है। विज्ञान और शस्त्र-चिकित्सा की उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी यह अनुभव करते है कि भावना की दृष्टि से मानव-हृदय को विधाता ने अज्ञात, अत्यन्त भावुक और कोमल उपकरणों-से बनाया है। वह एक बार छिन्न-भिन्न होकर केवल सहानुभूति से पुनर्जीवित नही हुआ करता।

विनोद

कुछ दिन पहले मेरा भी यही दृष्टिकोण था। पर, अब वह गजेन्द्र-सिंह जी के प्रभाव से बदल गया है। उनका कहना है कि जीवन जीने-के लिए है, रोने या निराश होने के लिए नही। निराशा को वह मनुष्यता के विरुद्ध एक चुनौती मानते है और उसके आगे झुक जाने-को संसार की सबसे बडी दुर्बलता।

माधवी

किन्तु, निराशा और आघात की प्रत्येक सीमा सह्य नही हो सकती। कही-न-कही तो मनुष्य को हार माननी ही पड़ती है। मेरा दु.ख सामान्य दु ख नही है, विनोद जी !

विनोद

मै उससे भली भॉति परिचित हूँ; उसका खूब अनुभव कर सकता हूँ। मै भी भुक्तभोगी हूँ। मुझे क्या आप साधारण दु ख का दु.खी समझती है ? पॉच-पॉच बार निराशा के हलाहल का प्याला मैने पिया है और उसकी कटुता और जलन को सहन किया है। किन्तु, आपके दु ख की गभीरता को मै अपने दुःख की दारुणता से कही अधिक भीषण समझता हूँ।

माधवी

आपके हृदय की इस पर—दु ख-कातरता का मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मै आपकी इस अकृत्रिम सहानुभूति के लिए आपकी कृतज्ञ हूँ।

विनोद

मै वास्तव मे यह अनुभव करता हूँ कि नवीनचन्द्र जी ने आपके साथ घोर अन्याय किया है। ससार का आप-जैसा महान् मूल्यवान् नारी-रत्न ईश्वर के वरदान की तरह सामने आ जाने पर जिस मनुष्य से अस्वीकृति का निष्ठुर आघात पा सके, उसे मै मनुष्य नही, पशु समझता हूँ। और, नवीन जी का दम्भ तो देखिए ! वह अपने को शायद अति-मानव या महा-मानव समझते हैं। छाती के नीचे हृदय की जगह पत्थर छिपा हुआ है और बनते है देशभक्त, दीनबन्धु ! दूसरो से घृणा करके ही अपने आदर्शवाद का उच्च-आसन सुरक्षित रखना चाहते है ! क्षमा कीजिए, मै तो ऐसे लोगो को घोर दम्भी और पाखण्डी समझता हूँ। ऐसी ही वह इला देवी है ! दोनो की खूब जोडी मिली है।

माधवी

कोई कितनी भी निष्ठुरता प्रकट करे या अन्याय करे, उसके प्रति इतनी कठोर भाषा प्रयुक्त करना उचित नही। पर, क्या किया जाय ? हृदय पर आघात पडने पर भाषा उग्र हो ही जाती है। अतिरेक किसी भी बात का उचित नही होता। अन्ततः वह असह्य हो ही उठता है। अच्छा, उस सुषमा को क्या हो गया है; वह भी तो आजकल उन्ही-मे मिल गई है ! उसका भी दिमाग आसमान पर चढ गया है। आप-जैसा, सरल, सहृदय और कद्रदान मनुष्य जीवन का चिर-साथी बनने को तैयार हो जाय, इससे बढकर सौभाग्य किसी स्त्री के लिए क्या हो सकता है ? सुषमा ने आपको तिरस्कृत करके जीवन के एक महान् लाभ से अपने को वचित कर लिया है।

विनोद

यह आपकी उदारता है, जो मेरी अकारण इतनी प्रशसा कर रही है। मैं तो आपकी चरण-रज की समता भी नही कर सकता। उदारता, सहृदयता और भावुकता के साथ विद्या-बुद्धि-सम्बन्धी इतनी बडी योग्यता इस देश मे बहुत कम स्त्रियो मे नजर आती है। आप वास्तव में हमारे

समाज के लिए गौरव-स्वरूप है । नवीन जी ने आपकी कृपा को ठुकराकर निष्ठुरता ही का नही, मेरी नम्र राय मे, अविवेक और मूर्खता का भी परिचय दिया है ! काश कि किसी हृदय वाले पुरुष को आपने यह सौभाग्य प्रदान किया होता ! वह वास्तव मे आपको पाकर नर-रत्न बन जाता ।

माधवी

यह आपकी सहृदयता है, जो आप मुझे इतना ऊँचा स्थान देते है, वास्तव मे तो मै किसी योग्य नही हूँ ।

विनोद

यह क्या कहती है आप ? यह तो आपकी नम्रता के सिवा और कुछ नही है । आप एक महान् नारी है । आपकी उदारता और सरलता ही ने आपको इतना सस्ता बना दिया कि नवीन जी-जैसे व्यक्ति आपको तिरस्कृत कर सके ।

माधवी

तिरस्कृत ही नही, उन्होने मुझे बहिष्कृत भी कर दिया है । समाज-सेवा के किसी भी कार्य मे वह कभी मेरा सहयोग लेना नही चाहते । यह तो अजीब बात है । है न ? ऐसा कौन-सा पाप किया है मैने ?

विनोद

मै फिर कहता हूँ कि यह उनका दम्भ है, अहकार है । इस मिथ्या अभिमान को नष्ट करना होगा-। विद्रोह करना होगा, समझी माधवीदेवी, विद्रोह करना होगा ।

माधवी

विद्रोह कैसा ?

विनोद

निराशा को ठोकर मारकर तिरस्कृत नारीत्व को एकदम उठ खड़ा होना होगा और अभिमानी पुरुषत्व को बता देना होगा कि यदि वह उसकी आकाक्षा नही करता, तो उसे भी उसकी अणु-मात्र भी आकाक्षा

नही है। अपमान और अनिच्छा के बदले अपमान और अनिच्छा तथा सम्मान और आकाक्षा के बदले सम्मान और आकाक्षा, यही ससार के स्वाभिमानी नारीत्व की निष्ठुर पुरुषत्व के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी चाहिए। स्वाभाविक स्नेह के चरणो ही मे स्वाभाविक स्नेह का अर्घ्य चढाया जाना उचित है। पत्थरो के देवो के विरुद्ध विद्रोह किए बिना उनका अहकार, उनकी जडता दूर नही हो सकती।

माधवी

क्या पत्थर के देवो पर भी किसी का प्रभाव पड सकता है ? क्या उनकी जडता कभी दूर हो सकती है ?

विनोद

क्यो नही ! इसके लिए प्रतिकार करने वाले मे दृढता की आवश्यकता है। आप जैसी दिव्य-गुण-सम्पन्न महिला का प्रेम क्या इतनी सस्ती चीज है कि कोई अरसिक व्यक्ति, ज़रा-से, थोथे आदर्शवाद के झूठे अभिमान के बल पर उसे निष्ठुरता से ठुकरा दे। विधाता के सब से अधिक मूल्यवान् वरदान का क्या इतना अपमान होना चाहिए ? आप ज़रा अपनी तेजस्विता और स्वाभिमान को जाग्रत तो कीजिए, फिर आप देखेगी कि आपके चरणो मे स्थान पाने के लिए वास्तविक, स्वाभाविक और आन्तरिक मानवीय स्नेह इतना लालायित है कि नवीनचन्द्र-जैसे अभिमानी पुरुष भी आपको ईर्ष्या की दृष्टि से देखे।

माधवी

आखिर आप मुझे व्यावहारिक रूप से क्या सलाह देते है ? स्पष्ट रूप से कहिए न ?

विनोद

मुझे और कुछ नही कहना। मै कह तो चुका कि विद्रोह करना चाहिए।

माधवी

आखिर विद्रोह की कोई निश्चित दिशा तो होनी चाहिए।

विनोद

दिशा क्यो नही है ? यदि आप मुझे जीवन-पथ पर अपने साथ चलने का सौभाग्य देने की कृपा करे, तो हम दोनों मिलकर नवीनचन्द्र और उनके साथी स्त्री-पुरुषो के दम्भ और अभिमानपूर्ण आदर्शों के विरुद्ध, उनके सकीर्ण और छोटे-से गुट के विरुद्ध जबर्दस्त विद्रोह कर सकते है, उन लोगो से अपने तिरस्कार और अपमान का बदला ले सकते है ! वह हम लोगो का ऐसा विद्रोह होगा,जो अस्वाभाविकता के विरुद्ध स्वाभाविकता का, दम्भ और महत्ता के विरुद्ध सरलता और सामान्यता का और उच्चादर्शों के थोथे और अभिमानपूर्ण जयनाद के विरुद्ध स्त्रियो और पुरुषों के प्राकृतिक सहयोगपूर्ण जीवन के कोमल और मधुर सगीत का विद्रोह होगा। उसी विद्रोह मे से, क्षुब्ध महासागर-मे से मधुर अमृत की भाँति, यदि आपको कृपादृष्टि होगी तो, किसी दिन हम दोनो के जीवन का वह चिर-मिलन भी निकल आएगा, जो ससार को यह दिखला देगा कि तिरस्कार और अपमान के आघात से निराश हो जाने वाले स्त्री-पुरुष भी मिल-जुलकर अपनी पारस्परिक सहृदय सहानुभूति से अपने जीवन को खँडहर से हरा-भरा उद्यान बना ले सकते है।

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[नगर की एक सड़क पर एक ओर से गजेन्द्रसिंह का प्रवेश और उसी ओर से उसके पीछे-पीछे दूसरे ही क्षण मायादेवी का प्रवेश ।]

मायादेवी

[पीछे से पुकारकर] सुनिए !

गजेन्द्रसिंह

[पीछे की ओर शीघ्रता से घूमकर] कहिए !

मायादेवी

मैं यह कहे देती हूँ कि मैं आपकी बदतमीजी बरदाश्त नही कर सकती !

गजेन्द्रसिंह

किसी परिचित की पुकार सुनकर फौरन् रुकना, पीछे की ओर मुड़कर उसे तत्काल उत्तर देना अगर बदतमीज़ी है, तो तमीज़दारी तो उसकी आवाज़ को अनसुनी करके चला जाना ही हो सकता है ।

माया

यह नही । कल की बदतमीज़ी !

गजेन्द्र

कल तो मेरी तुमसे भेट ही नही हुई !

माया

पीठ-पीछे की बदतमीज़ी तो और भी असह्य होती है। कल तुम मेरी अनुपस्थिति मे मेरे घर गए थे ?

गजेन्द्र

हाँ, गया तो था ।

माया

वहाँ कितनी देर ठहरे थे ?

गजेन्द्र

ठीक समय तो नही बता सकता, मेरे पास इन दिनो घडी नही रहती ! मेरे पडोस मे एक नटखट लडका रहता है । कभी-कभी मेरे पास आ जाता है । मूँछे पकडकर खीचने का उसे बडा शौक है । लम्बे बाल और लम्बी मूँछे कुश्ती मे विरोधी के हाथो पडकर कही चित्त न करा दे, इसलिए अपने राम सफाचट रखते है । मूँछ न पा सकने की खीज उस लडके ने घडी पर उतारी । मेरी घडी का एक दिन बिलकुल कचूमर ही निकालकर छोडा । मरम्मत के दाम मूल कीमत से भी अधिक लगते देखकर हमने अपनी वह घडी मुहल्ले के एक सुप्रसिद्ध तम्बाकू-भक्षक को दे दी, चूनादानी बना लेने को । फिर भी, अनुमान से कह सकते है, यही कोई आधा घण्टा ठहरे रहे होगे ।

माया

इतनी देर तक वहाँ क्या करते रहे थे ?

गजेन्द्र

चोरी तो की नही थी । अगर कुछ किया ही होगा, तो अच्छा ही काम किया होगा । कुछ जनसेवा ही की होगी ।

माया

जन-सेवा ! अच्छा काम ! शर्म नही आई तुम्हे ! तब से सारे कार्यकर्त्ताओ मे मेरी हँसी उड रही है ! तुम मुझे कही मुँह दिखाने योग्य भी नही रहने देना चाहते ! अपनी शरारतो से अभी तक बाज़ नही आते । वही पुराना रग-ढग, वही पुरानी बाते !

गजेन्द्र

ऐसा क्या पाप किया था मैने ? मेरे-जैसे मनुष्य पुण्य करके भले ही भूल जायँ, पाप करके कभी नही भूल सकते । आखिर, बताओ तो सही, क्या किया था मैने । मुझे तो अपना ऐसा कोई गभीर अपराध याद नही आता ।

माया

बिलकुल दुध-मुँहे बच्चे जो ठहरे ! क्यो याद आने लगी कोई बात ! सुषमा ने देखकर उसी समय वहाँ से लौटकर इलादेवी, नवीन-चन्द्रजी, उपेन्द्रनाथजी और दूसरे सब कार्यकर्त्ताओ से कह दिया और सबने मेरा खूब मजाक उडाया !

गजेन्द्र

अरे कुछ बात भी तो बताओगी या यो ही अपनी काल्पनिक दुर्दशा-का दुखडा रोती जाओगी ! ऐसा क्या गुनाह हो गया मुझसे ?

माया

क्यो बन रहे हो मुझसे। इतनी बडी बदतमीजी तुम इतने अनजान रूप में कर आए कि कुछ याद ही नही आता ! बड़े भोले हो ! पिछले महीने सुषमा के साथ ही मैंने जूतो के साथ चप्पले भी पहनी थी। मैं घर पर मौजूद न थी। तुम पीछे से मेरे घर जा पहुँचे। कुछ ही देर में सुषमा वहाँ पहुँची, तो क्या देखती है कि आप बैठे-बैठे मेरी चप्पलो पर पालिश कर रहे है ! देखते ही बेचारी सुषमा शर्म के मारे मर गई और उलटे पैरो लौट गई। आप इतने ध्यान-मग्न थे कि न उसे आते देखा और न जाते ! यह सरासर बदतमीजी न थी, तो क्या थी ?

गजेन्द्र

[**अट्टहास करके**] अरे भई वाह ! वह चप्पलो की बात है ! मैंने सोचा, न मालूम कौन-सा महान् पाप अनजान में मुझ से बन पडा है ! केवल चप्पलो की बात है। बस, इतनी-सी बात है। वह भी कोई बात में बात है ! निस्वार्थ सेवा का एक छोटा-सा कार्य ही तो था वह ! देखा कि ताक में पालिश की डिबिया रखी हुई है और तुम्हारी चप्पले लोक-सेवा के कार्यो मे दिन-रात घिसी जाने पर भी केवल पाव-तोले पालिश को तरस रही है ! बस, ज़रा डिबिया उठाकर दो हाथ फेर दिए। कौन-सा गजब हो गया, कौन-सा आसमान टूट पडा ?

शरीर-श्रम और हाथ से सफाई के काम कर लेना तो नवीनचन्द्रजी, इलादेवी और उनके हम सारे अनुयायियो का एक जीवन-व्रत है न ?

माया

यह अच्छा जीवन-व्रत ठहरा ! यह अच्छी लोक-सेवा रही !

गजेन्द्र

लोक सेवको की सेवा क्या लोकसेवा नही है ! व्यक्तियो ही से तो समाज बनता है। सारे समाज की सेवा का व्रत लेने वाले लोकसेवक यदि कभी अपने साथियो की भी कोई सेवा कर दिया करे, तो आपत्ति क्यो होनी चाहिए ? आखिर मुझे वहाँ समय काटने के लिए किसी साधन की भी तो आवश्यकता थी। तुम्हारी प्रतीक्षा भी तो करनी थी। समय भी कट गया और एक जीवन-व्रत के पालन का भी छोटा-सा अवसर मिल गया !

माया

और क्या ! वही तो एक साधन रह गया था समय बिताने और जन-सेवा का !

गजेन्द्र

किसी की प्रतीक्षा मे बैठे-बैठे मक्खियाँ मारना या भावोच्छ्वासपूर्ण गीत गुनगुनाना तो पुराने जीवन ही मे उचित हो सकता था, लोकसेवा-के व्रत मे ज्योतित नवजीवन मे तो प्रत्येक क्षण सक्रिय और सजग रहना ही आवश्यक है। एक क्षण भी निष्क्रियता या जीवन-कला-विहीन कार्यो-मे न बीतना चाहिए। शरीर-श्रम के प्रति सदा सजग रहना चाहिए !

माया

इस सजगता का क्या कहना है ! इतनी बड़ी सुषमादेवी आई और चली गई और आपको खबर तक न हुई !

गजेन्द्र

यह एक अलग चीज है। इसे एकाग्रता और तन्मयता कहते है। यह एक दूसरा गुण है, जिसकी जनसेवको के समाज मे बड़ी कद्र होती है।

जी लगाकर काम न करने वालो के लिए तो लोकसेवको के दल मे कोई स्थान नही हो सकता ।

माया

और उधर सुषमादेवी के लौटकर जाकर कहने पर सबने मेरा मजाक उडाया, सो कुछ नही ?

गजेन्द्र

वह सुषमादेवी और उन सब की गलती थी ! अपने ही आदर्शो का स्वयं ही मजाक उडाना सब से बडी नादानी है । इसका जनता पर बडा बुरा प्रभाव पड सकता है ।

माया

आखिर, तुम्हारा ही हाथ न लगने से मेरी चप्पले नष्ट नही हो जाती ! तुम्ही को ऐसी क्या पडी थी ?

गजेन्द्र

देखो मायादेवी, नए जीवन मे प्रवेश कर लेने पर पुराना दृष्टि-कोण बिलकुल छोड देना पडेगा । केवल मै ही अकेला हूँ, जिसका दृष्टि-कोण पूर्णतया परिवर्तित और बिलकुल स्वस्थ दृष्टिकोण है । तुम्हे और तुम्हारे प्रेरक साथियो और साथिनो को अभी तक पुराने दृष्टिकोण-की स्मृति ने पूर्णत. छोड़ा नही है, तभी तो इस ज़रा-सी बात को इतने अधिक हास्य का विषय बनाया जा सका । ज़रा सोचो तो सही, प्रेम और विवाह से चप्पल और पालिश का क्या सम्बन्ध है ? तौबा विवाह और प्रेम के संकल्प से की है या मनुष्य-मनुष्य के पारस्परिक सेवा और सहायता के कार्यो के स्वाभाविक सम्बन्धो से भी ?

माया

सेवा और सहायता के कार्य की आपकी व्याख्या क्या यही है ?

गजेन्द्र

इसमे क्या अनौचित्य है ? जमना मेहतरानी का पाख़ाना उठाने से जिस गजेन्द्रसिह को परहेज नही हुआ, उसे एक साथिन देशसेविका की

चप्पलो पर पालिश करने से परहेज क्यो होता ? और फिर सामने अस्वच्छ पडी हुई चप्पलों को सहन करना क्या जीती मक्खी निगलना न होता ? हम लोग और कुछ न सही, क्रान्ति के पथ-पर एक-दूसरे के सहचर तो है ही। हम सारे ससार की सेवा का व्रत लेकर तो साथ चले और एक दूसरे की ज़रा-सी सेवा और सहायता पर मजाक के विषय बन जायँ, यह भी कोई मनुष्यता है !

माया

अच्छा, अच्छा। बहुत हुई यह मनुष्यता ! मै स्वय अपना काम कर ले सकती हूँ। तुम अब इस तरह की बदतमीज़ी कभी न करना ! बस कहे देती हूँ, वरना......

गजेन्द्र

यदि साथी-साथिनों की विशुद्ध, निष्काम और निस्स्वार्थ सेवा बदतमीज़ी है, तो यदि तुम आज्ञा दो, तो, मै इसे भी उसी तरह तिलाजलि दे सकता हूँ, जिस तरह विवाह और प्रेम के सकल्प को दे चुका हूँ; पर, ईश्वर न करे, यदि कही इलादेवी को हैजा हो जाय और नवीनचन्द्रजी उनका पाखाना उठाने से इनकार कर दे, तो तुम सब मिलकर उन्हे अपने समाज-सेवक-दल से निकाल दोगी ! फिर, जब एक जनसेवक द्वारा दूसरी जन-सेविका की बडी सेवा क्षम्य ही नही, अनिवार्य मानी जा सकती है, तब तीसरे जनसेवक द्वारा चौथी जनसेविका की छोटी-सी सेवा अक्षम्य अपराध क्यो समझी जानी चाहिए ?

माया

वह तुम्हारी शरारत थी। उसकी ऐसी सेवाओं से तुलना नही की जा सकती। तुम मुझे इस तरह बेवकूफ न बना सकोगे। तुम्हारा हृदय अभी तक स्वच्छ नही हुआ है !

गजेन्द्र

हाय रे दुर्भाग्य ! मै अपना हृदय चीरकर कैसे दिखाऊँ ! मै तुमसे सच कहता हूँ कि मेरी भावना तुम्हारे प्रति बिलकुल वैसी ही

निर्मल और निर्दोष है, जैसी नवीनचन्द्र जी की इलादेवी के प्रति और उपेन्द्र नाथ जी की सुषमा देवी के प्रति हो सकती है।

माया

ऐसी भाषा बोलना अनुचित है। यों कहो कि जैसी मेरे प्रति इलादेवी की, सुषमादेवी के प्रति मेरी, उपेन्द्रनाथ जी के प्रति तुम्हारी और तुम्हारे प्रति नवीनचन्द्र जी की है।

गजेन्द्र

अच्छा, बाबा, यों सही। तुम लोग बातें तो हृदय की स्वच्छता और निर्दोषिता की करती हो, पर, न मालूम कैसी एक अद्भुत, अज्ञात और अस्वस्थ भावना सदैव अपने मन में छिपाए रहती हो, जिसके कारण न जाने किस-किस कार्य और किस-किस बात में क्या-क्या दोष, अपराध या पाप खोजने का यत्न किया करती हो।

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[मेहतरों की बस्ती मे बरगद के वृक्ष के नीचे सार्वजनिक आयोजनों तथा सभाओं के लिए निर्धारित छोटा-सा स्थान। माधवीदेवी और विनोदकुमार हरिजनों से मिलती-जुलती सादी वेशभूषा मे। विनोदकुमार और माधवीदेवी सभास्थल पर झाड़ू लगाते हैं। इस कार्य से निवृत्त होकर दोनों खड़े होकर बातचीत करते हैं।]

विनोदकुमार

तुमने मुझसे विवाह करके वास्तव मे मेरे जीवन को कृतार्थ कर दिया, माधवीदेवी! मेरे उजडे हुए हृदय मे मानो एक नया नन्दनवन बस गया है। अन्तर् के उस अक्षय सौन्दर्य मे बाहर के वातावरण की सारी असुन्दरता डूब जाती है। प्राणो मे एक ऐसी अद्भुत सुगन्ध व्याप्त हो गई है कि उसके आगे आस-पास के स्थानो की सारी दुर्गन्ध दब जाती है।

माधवीदेवी

यह मैने कभी नही सोचा था कि वास्तविकता और सासारिकता के पुजारी विनोदकुमार मुझसे विवाह करते ही स्वप्नदर्शी और कल्पना-विहारी बन जायँगे। ऐसा न हो कि अपने विवाहित जीवन के मोह मे पडकर हम दोनो एक क्षण के लिए भी उस वास्तविक लक्ष्य को भूल जायँ, जिसके लिए हमने विवाह किया।

विनोदकुमार

इस विनोदकुमार को इतना प्रमत्त न समझो, माधवीदेवी! हम अपने वास्तविक लक्ष्य को अच्छी तरह जानते है और उसकी ओर प्रगति कर रहे है। हम यह कभी नही भूल सकते कि हम दोनो को मिल-जुलकर

दभ, अहकार और अस्वाभाविक उच्चता के पाखड की जडे उखाड फेंकनी है और उनके प्रतीक नवीनचन्द्र, इलादेवी आदि की गिरोहबन्दी-के संकीर्ण दायरे को तोड देना है ।

[जमना चौधराइन का प्रवेश ।]

जमना

आप दोनो ने तो गजब ही कर डाला महाराज ! दिन-रात हम गरीबो की बस्ती ही मे रहकर हमारी मदद किया करते है । हमारे जैसा ही सीधा-सादा रहना, वैसा ही खाना-पीना और वैसे ही सब काम । छोटेलाल भैया तो कहते थे कि आप दोनो नवीनजी और इलादेवी से भी आगे बढे हुए है, उनसे भी ज्यादा पढे-लिखे है ।

विनोदकुमार

यह बात तो नही है, जमना चौधराइन ! हम तो मामूली आदमी है । सच तो यह है कि आप लोगो ने दयापूर्वक हम दोनो को अपनी बस्ती मे आश्रय देकर हमारी जिन्दगी सार्थक कर दी है । हम दोनो तो आप लोगो की कृपा और स्नेह के समुद्र मे, मानो, बिलकुल मग्न है ।

माधवी

नवीनजी की और बाते तो ठीक थी, पर, उनकी यह बात घर-गृहस्थी मे रहने वाले किसी भी भले आदमी या स्त्री की समझ मे नही आ सकती थी कि जिन्दगी-भर विवाह न करना ।

विनोद

और बराबरी की उम्र की लडकी के साथ-साथ दिन-रात रहकर काम करना । इसीसे समाज मे निन्दा होती थी ।

जमना

यही बात हमे बहुत खटकती थी । उन्होने हमारे लडके बिहारी को भी बिगाड दिया था । वह भी जिद करने लगा था कि कभी ब्याह न करेगा । इससे तो हमारे खानदान का चिराग ही बुझ जाता ।

विनोद

वह तो अच्छा ही हुआ कि उस दिन छोटेलाल भैया ने उनमे साफ-साफ कह दिया कि या तो विवाह कर ले, अन्यथा, इस हरिजन-बस्ती-मे कुटी बनाकर इलादेवी के साथ रहना और काम करना बन्द कर दे ।

जमना

बस, तभी से, महाराज, उन दोनो ने इस बस्ती मे बिलकुल आना ही छोड दिया है । छोटेलाल भैया को ऐसी कड़वी बात इसलिए कहनी पडी कि आस-पास के गाँवो वाले हमे नाम रखने लगे थे कि तुम्हारी बस्ती मे बिना-ब्याहे जवान लडके-लडकियाँ दिन-रात साथ-साथ रहकर काम करते हैं ! वैसे नवीनजी और इलादेवी थे तो दोनो बडे सुशील । हमने उनकी कभी कोई बेजा बात अपनी आँखो से नही देखी थी ।

माधवी

पर, आप भी क्या करती ! दुनिया का मुँह थोडे ही बन्द किया जा सकता था । और फिर अपनी-अपनी प्रतिष्ठा का हर कोई खयाल करता है । सच हो या झूठ, बदनामी भी तो बहुत बुरी बात होती है । उनके साथ आप लोग भी तो व्यर्थ ही बदनाम हो रहे थे ।

जमना

खैर, अब जो होना था, सो हुआ । वैसे नवीन जी और इलादेवी दोनो बडे ही मजबूत दिल के थे, पर, छोटेलाल की यह चोट उनके दिल पर बहुत ही गहरी बैठ गई और दोनो ने यहाँ आना-जाना बिलकुल ही छोड दिया । बीच मे इलादेवी ने तो आने की कोशिश भी की, पर नवीन जी ने उन्हे रोक दिया । कभी-कभी जब उन दोनो की याद आ जाती है, तब जी बडा दुखी होता है । बिहारी के बाप ने तो तब-से खाट ही पकड ली है और बिहारी भी बिलकुल उदास रहने लगा है । पर, क्या करे ! दुनिया का भी ख्याल था और अपने बिहारी का घर बसाने की भी चिन्ता थी । बडे लाचार थे । क्या करते । और फिर अब उनके लिए ज्यादा चिन्ता कहाँ तक करे ? आप दोनो क्या कम है ?

आप तो हम गरीबो की सेवा उनसे भी ज्यादा करते है ? आपने सारी बाते समझाकर हमारी आँखे भी खोल दी है।

माधवी

यह तो हमारा कर्तव्य है, चौधराइन ! हम इसे अपना बडा सौभाग्य समझते है कि आप लोगो ने हमे अपनी सेवा के योग्य समझा है।

विनोद

देखो चौधराइन, यह माधवीदेवी विलायत-पास होते हुए भी कैसी बिलकुल आपकी बस्ती की एक साधारण बहू-जैसी बन गई है। सिर्फ परदा करने का आप लोगो का रिवाज छोडकर बाकी सारी बाते इन्होने आप ही लोगो की ग्रहण कर ली है। खाना-पीना, पहनना-ओढना सब आप ही लोगो जैसा तो है। बिलकुल सीधा-सादा। चार बजे सुबह से उठकर रात के दस बजे तक आप लोगो की सेवा मे लगी रहती है। झाडू लगाना, लीपना, कडे थापना किसी से भी तो परहेज नही करती।

जमना

इनके क्या कहने है ! विलायत-पास और अप्सरा-सा रूप ! जब ये गाँव की बहू की तरह झाडू लगाती है, तब हम गरीबो की बस्ती-पर, मानो भगवान् की दया बरस जाती है। इनके गुणो की मै क्या बडाई करूँ ?

माधवी

और विनोदकुमार क्या किसी से कम है ? इतने पढे-लिखे और बुद्धिमान् होते हुए भी अपने शानदार भावी जीवन का मोह और कमाई का लोभ छोडकर बिलकुल त्यागी बनकर आप लोगो की बस्ती मे बस गए है। दिन-रात आप लोगो की सेवा ही मे लगे रहते है। मुझसे विवाह तो इन्होने सिर्फ इसलिए किया है कि गाँव वालो की निन्दा और लोक-लज्जा मे आप लोगो को बचा सके और आपके लड़के-लड़कियो को क्वारे रहकर जिन्दगी बिताने की जिद से दूर रख सके।

जमना

यह आप लोगो ने बहुत अच्छा किया है। धीरे-धीरे मेरा बिहारी भी अपना घर बसाने को तैयार हो जायगा। तब तो मेरे भाग्य ही खुल जायँगे।

माधवी

इनकी पाठशाला के काम मे तो आप लोगो को सन्तोष होगा ही।

जमना

आप लोगो ने जब से आकर पाठशाला सँभाली है, वह खूब चल निकली है। आप लोगो ने आते ही लडको की पाठशाला अलग और लडकियो की अलग कर दी है। पहले जब नवीन जी के जमाने मे लडको और लडकियों की एक ही मिली-जुली पाठशाला चलती थी, तब कुछ लोग उसमे ऐतराज करते थे और हाजिरी कम हुआ करती थी।

विनोद

नवीनजी और इलादेवी के सारे काम ऐसे ही उलटे-उलटे हुआ करते थे, इसीलिए उनको सफलता नही मिलती थी। हम लोगो ने उनकी की हुई गलतियो को दूर हटाकर आप लोगो की जिन्दगी और रीति-रिवाज़ों के अनुसार ही आप लोगो की सेवा करने का निश्चय किया है। नवीन जी और इलादेवी के फैलाए हुए पाखंड और दभ को खतम करने का हम दोनो ने बीड़ा उठा लिया है। इसीलिए हम दोनो-ने विवाह किया है।

[छोटेलाल का प्रवेश]

छोटेलाल

विनोद भैया, आपने कहा था कि लडकियो की पाठशाला के जलसे-के लिए आज लड़कियो के नाच-गाने की तैयारी की जाँच करेंगे और ठीक काम करने वाली लडकियो को इनाम बाँटेगे। उसका क्या हुआ ?

विनोद

ले आओ लड़कियो को यही ! यह जगह माधवीदेवी ने झाडकर तैयार तो करली है । यही लड़कियो के सगीत और नृत्य के अभ्यास की परीक्षा होगी । अच्छा काम करने वाली लडकियो को इनाम भी दिया जायगा ।

[छोटेलाल का प्रस्थान]

माधवी

आशा है, अगले हफ्ते हमारी हरिजन-कन्या-पाठशाला का उत्सव खूब सफल होगा । लडकियो का सामूहिक नृत्य तथा सम्मिलित सगीत शुद्ध जनकला का एक अच्छा नमूना सिद्ध होगा ।

जमना

हमने सुना है, आप लोग उस दिन बडे-बडे अफसरो को भी जलसा देखने यहाँ बुलाएँगे । तब तो बडा आनन्द रहेगा । हम गरीबो की यह बस्ती निहाल हो जायगी ।

विनोद

जरा देखना तो सही चौधराइन ! उस दिन कैसी रौनक रहती है । जिले के सबसे बडे अधिकारियो ने हमारा निमत्रण स्वीकार कर लिया है । नवीनजी और इलादेवी तो अपने घमड के मारे कभी किसी अफसर से मिलते-जुलते ही न थे । उन दोनो ने इतने दिन हरिजन-आश्रम मे काम किया, मगर, किसी भी बडे अधिकारी को यहाँ न ला सके । अगर मिलते-जुलते रहते, तो अधिकारियों की उदारता से आश्रम की अभी तक काया पलट ही हो गई होती । आखिर, हरिजनो से हमदर्दी तो सभी को है । अपने दम्भ और घमड के मारे उन दोनो ने यह कभी नही सोचा कि संस्थाओं का सचालन बडी हिकमतअमली से होता है ।

[छोटेलाल साथ, जन-गीत तथा जन-नृत्य की सामूहिक सज्जामें कुछ हरिजन बालिकाएँ आकर चबूतरे पर सामूहिक नृत्य करती और निम्नलिखित सामूहिक गान गाती हैं ।]

गान

मेरे आँगन मे छप्पर छवाओ, मेरे बीर,
आँगन मे छप्पर छवाओ।
काले-काले बादल छाए,
कुटिया पर बूंदें ले आए,
आम-डाल पर कोयल बोली,
वन मे मोर, पपीहा गाए।
ऊँचे बरगद मे झूला डलाओ, मेरे बीर,
बरगद मे झूला डलाओ।
मेरे आँगन मे०
हरी-हरी चूडी पहना दो,
पँचरगी चूनर रँगवा दो,
रिमझिम-रिमझिम मेह-झडी मे
छप्पर पर बेलें चढवा दो;
पीले फूलो की माला गुँथाओ, मेरे बीर,
फूलो की माला गुँथाओ।
मेरे आँगन में०

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[नदी के किनारे की हरियाली। चारों ओर एकान्त और शांति का वातावरण। एक कुंज के पास स्वच्छ पत्थर पर नवीनचन्द्र और इलादेवी बैठे हैं।]

नवीनचन्द्र

तुम मेरी मनोवेदना का अनुभव अच्छी तरह कर सकती हो, इला! तुम्हारे हृदय मे भी वही ज्वाला दिनरात धधका करती है, जिसने मेरे प्राणो को अग्निमय बना रखा है। हमारा देश इस पृथ्वी पर एक नरक बना हुआ है। हमारे देशवासी, स्त्री और पुरुष, कीडों-मकोडो की जिन्दगी बिताते है। शोषित, पीड़ित, दलित और तिरस्कृत मानवो के झुड के झुड जन्म और मरण के बीच मे केवल एक रौरव-यातना का अनुभव करते हुए किसी भी क्षण दम तोड़ देते है।

इलादेवी

इस स्थिति से इन्हे मुक्ति दिलाने का कोई उपाय भी है?

नवीनचन्द्र

उपाय है। इन कोटि-कोटि नर-नारियो की सेवा के लिए जीवन-अर्पण करने वाले निस्स्वार्थ और योग्य कार्यकर्ताओं की बहुत बडी संख्या मे आवश्यकता है। खेद है कि ऐसे कार्यकर्ता बहुत कम मिलते है। जो मिलते है, उनमे भी कितनी त्रुटियाँ होती है! 'छटाँक भर सेवा और मन भर अहंकार' उनमें से बहुतो की खास दुर्बलता होती है। देश की इस दुर्दशा पर हृदय मे आग धधकती है और आँखों मे आँसू भर आते है।

इलादेवी

इस स्थिति पर मैं भी बहुत दुखी हूँ, नवीन जी! मैं अपनी मनोव्यथा शब्दो में प्रकट नही कर सकती! कितना काम हमे करना है! हमारे

साथ कितने कम निस्स्वार्थ कार्यकर्ता है ! जो है, वे भी तुम-जैसे नेता-के नेतृत्व से उचित लाभ नही उठाते। बौद्धिकता और उच्चादर्शप्रेरणा, तेजस्विता और भावुकता, दृढता और दयालुता का जो सामजस्य तुम्हारे जीवन और चारित्र्य मे नज़र आता है, उसका उपयोग तुम्हारे साथी, सहयोगी और अनुयायी अभी तक उचित रूप मे नही कर पाए है।

नवीन

प्रशसा की जरूरत नही है, इला ! इससे मुझे कष्ट पहुँचता है ! मै यह भी जानता हूँ कि यदि मै इससे भी अधिक प्रशसापूर्ण शब्दो मे तुम्हारा वर्णन करूँ, तो, वह सत्य होने पर भी तुम्हे पसन्द न आएगा। स्वभावत. उससे तुम्हे शायद यह सन्देह भी होने लगेगा कि मै उस सर्व-सुलभ दुर्बलता का शिकार हो गया हूँ, जो एक नवयुवक के मन मे एक नवयुवती के सम्बन्ध मे उत्पन्न होने लगती है।

इला

यह कैसी हास्यास्पद बात कह रहे हो ?

नवीन

तुम चाहे जो समझो, पर, मेरे हृदय का यह हाल है कि यदि मै उसे चीरकर तुम्हे दिखा सकूँ, तो तुम यह देख पाओगी कि मै निरन्तर उच्चादर्श की ओर प्रभावित होते हुए भी वैसा ही एक साधारण दुर्बल युवक हूँ, जैसा कोई भी अन्य युवक हो सकता है। इन बातो की चर्चा-से कोई लाभ नही। एक-दूसरे की प्रशसा करके हम अपने युग और समाज की समस्याओ का कोई समाधान नही कर सकते।

इला

वर्तमान विषम परिस्थितियो पर विजय प्राप्त करने के लिए आखिर हमे कौन-सा कारगर उपाय अमल मे लाना चाहिए ?

नवीन

कोई एक रामबाण इलाज नही है। हमे आत्म-निरीक्षण करना चाहिए, अपने पिछले समस्त कार्यो का सूक्ष्म पर्यवेक्षण और सिहाव-

लोकन करके अपनी भूत काल की तमाम त्रुटियो को दूर करना चाहिए, उच्चादर्शों के प्रति अपने आकर्षण और अपने लक्ष्य के प्रति अपनी आस्था की आग को कभी न बुझने देना चाहिए, साथियो और साधनो-को बढ़ाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु, उनके अभाव मे भी कभी हतोत्साह न होना चाहिए। सैद्धान्तिक स्पष्टता और आदर्शवाद-की दृढता के साथ-साथ उच्च कोटि की बौद्धिकता भी हमे अपने अन्दर जाग्रत करनी चाहिए और अपने स्वीकृत कर्तव्यपथ पर सदा जागरूक और गतिशील बने रहना चाहिए।

इला

माधवीदेवी और विनोदकुमार तथा मायादेवी और गजेन्द्रसिह का हाल तो किसी से छिपा नही रहा है। उनके प्रति हम लोगो का क्या कर्तव्य होना चाहिए ?

नवीन

प्रम और विवाह के बन्धनों से मुक्त और पवित्र रहते हुए उच्चा-दर्शो और जन-सेवा के लिए जीवन-अर्पण करने का व्रत लेने वाले थोडे-से साथियो मे से अनेक हमसे बिछुड़ते जा रहे हैं। पर, हमे इससे निराश न होना चाहिए और अन्ततः जितने वच रहे, उन्ही को लेकर आगे बढ़ना चाहिए। उच्चादर्शो के हिमालय के शिखरो पर चढना अत्यन्त महान् और आवश्यक कार्य है, भले ही उन पर चढने वालो की सख्या बहुत छोटी हो। सासारिकता के गर्त मे गिरने की फिसलन प्रशसनीय नही कही जा सकती, भले ही बहुत लोगों की प्रवृत्ति उसी फिसलन की ओर अधिक हो। इसके साथ-साथ हमे एक और बात का ध्यान रखना चाहिए, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इला

वह क्या ?

नवीन

वह यह कि हमे अपने कठिन साधना-पथ पर चलते हुए घमंड ज़रा

भी न करना चाहिए। कौन कह सकता है कि हमारे मनो ही मे कोई दुर्वलता छिपी हुई नही है।

इला

हमारे मनो मे दुर्बलता !

नवीन

सभव है ! क्या हम मनुष्य नही हैं ?

इला

तुम्हारी यह शका निराधार है। मै माधवी, विनोद, गजन्द्र और माया के बारे मे बात कर रही थी। यह तो आवश्यक ही था कि हम लोग गजेन्द्रसिह और मायादेवी को किसानो की सेवा के लिए गॉव मे बस जाने को भेजे। यह प्रशसनीय है कि वे लोग गॉव मे बसकर किसानो- की सेवा कर भी रहे है, पर, खेद की बात है कि उन्होने जो जीवन-भर प्रेम और विवाह के प्रपच से बचकर जनसेवा करने का व्रत लिया था, उसे तोडकर आपस मे विवाह कर लिया है। उधर विनोदकुमार और माधवीदेवी ने हम लोगो के विरुद्ध षड्यन्त्र करके हमारी पीठ मे छुरा ही भोक दिया है।

नवीन

हमे किसी भी प्रहार से विचलित न होना चाहिये।

इला

वास्तविक बात तो तुम जानते ही हो कि तुमने माधवीदेवी का और मैने विनोदकुमार का प्रेम और विवाह का प्रस्ताव कठोरतापूर्वक ठुकरा- कर उन्हे आदेश दिया था कि वे लोग हमसे पृथक् रहते हुए अपना जन- सेवा का व्रत-पालन करते रहे। इसपर उन दोनों के हृदयों में हम दोनो- के प्रति भीषण ईर्ष्या और द्वेष भभक उठा। उन्होने बदले की भावना- से आपस मे विवाह करके हरिजनो मे हमारे विरुद्ध भ्रामक प्रचार किया और हमे हरिजनो का कार्यक्षेत्र छोडने को बाध्य कर दिया। मुझे इस- पर सबसे अधिक मर्मान्तक आघात पहुँचा है।

नवीन

अभी क्या हुआ है इला ! अभी तो हमें इससे भी भयकर आघात सहन करने पडेगे । सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र की यह एक विचित्र विशेषता है कि इसमे काम करने वाले दृढप्रतिज्ञ आदर्शवादी को जितना विरोध बाहरी शक्तियो के हाथो सहन करना पडता है, उससे कही अधिक विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, नेतृत्व की प्रतिस्पर्द्धा आदि से प्रेरित अपने ही साथियो के हाथो सहन करना पड़ता है । इस विष से नीलकठ बनकर ही जन-सेवा के कैलाश-शिखर पर चढा जा सकता है ।

इला

तुम्हारी इस उदारता, महता और क्षमाशीलता के आगे मेरा मस्तक नत है । पर, हमे यह भी तो तय करना चाहिए कि व्यावहारिक दृष्टि से इन लोगो के साथ हमे कैसा व्यवहार करना चाहिए।

नवीन

बस, यह समझ लो कि चार साथी कम हो गए । जो बच रहे हैं, उन्हे साथ लेकर हमे अपना काम करते रहना चाहिए । गजेन्द्रसिह और मायादेवी विवाह करके हमारे उच्चादर्श से अवश्य च्युत हो गए है, पर, वे हमारी ही नीति के अनुसार किसानो की सेवा का कार्य तो कर ही रहे हैं, अत., हमे किसान-सेवा का कोई अन्य केन्द्र स्थापित न करना चाहिए ।

इला

और माधवीदेवी और विनोदकुमार ?

नवीन

वे तो हमारे विरोधी ही बन चुके है ? उन्होंने फिलहाल हमारा हरिजन-सेवा का केन्द्र हमसे बिलकुल छीन लिया है, पर, हमें उनके मुँह भी न लगना चाहिए । सिद्धान्तहीन व्यक्ति जब किसी अन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर किसी सस्था या कार्यक्षेत्र पर कब्जा कर लेते है, तब पहले तो सच्चे कार्यकर्ताओ को कुछ निराशा होती है, पर, यदि

धैर्य-पूर्वक कुछ समय तक प्रतीक्षा की जाय, तो क्रमशः सिद्धान्तहीन व्यक्तियो की वास्तविकता का जनता को पता लगता ही जाता है और एक दिन जनता उनको हटाकर फिर वास्तविक कार्यकर्ताओ को उनके पुराने स्थानो पर प्रतिष्ठित करती है।

इला

क्या यह नही हो सकता था कि हम लोग उनके भ्रामक प्रचार के बावजूद भी, हरिजन-बस्ती के निवासियो की अपने प्रति बढती हुई उदासीनता तथा सन्देह को सहन करते हुए भी, वही बने रहते।

नवीन

मै यह नही चाहता था। मेरे लिए तो उधर मजदूरो का नया कार्यक्षेत्र खुल गया था और तुम्हे उस लाछनमय वातावरण मे अकेली छोड आना मै उचित नही समझता था। मेरा हृदय इसके लिए तैयार ही नही होता था।

इला

अपने प्रति तुम्हारे इस मोह को मै नही समझ पाई।

नवीन

कुछ बाते यदि बिना-समझी भी रह जायँ, तो कोई विशेष हानि नही।

इला

क्या इससे तुम्हारी मेरे प्रति दुर्बलता नही प्रकट होती। क्यो नही तुम मुझे भी उसी प्रकार प्रत्येक प्रहार, लाछन, विरोध, अपमान और सघर्ष की आग मे झोक देना चाहते, जिस प्रकार अपने अन्य साथियो को झोकने को सदा तैयार रहते हो ? क्यो तुम हरिजन-बस्ती का अपना सेवाकेन्द्र छोडकर चले आए ? क्यो तुम मुझे भी वहाँ नही जाने देना चाहते ? आखिर, तुम मुझे क्यो वहाँ के विरोध, सघर्ष और लाछन-से बचाना चाहते हो ? विरोधियो के प्रहारो से मेरी रक्षा क्यो करना चाहते हो ? मुझे मुसीबतो से अलग क्यो रखना चाहते हो ? आखिर,

मेरे प्रति इस पक्षपात का क्या कारण है ? तुम्हारे हृदय मे आखिर यह दुर्बलता क्यो उत्पन्न हुई ? इससे तो मेरी उस धारणा पर आघात होता है, जो मै अब तक तुम्हारे प्रति अपने हृदय मे रखती आई हूँ।

नवीन

मुझे पत्थर का देव न समझो इला ! मै मानव ही तो हूँ, रक्त और मास का मानव, चारो ओर से मानव, भीतर से मानव, बाहर से मानव, दुर्बलताओ का पुतला मानव, किन्तु, वह मानव, जो अपनी पूरी शक्ति से अपनी दुर्बलताओ को दबाता हुआ अपने उच्च और महान् लक्ष्य के पथरीले पथ पर बढता जाता है। तुम उस बात का जो अर्थ समझना चाहती हो, वह कदापि नही है। पर, तुम धोखे मे न रह जाओ, इसलिए मै तुम पर यह स्पष्ट रूप मे प्रकट कर देना चाहता हूँ कि जीवन के लम्बे मरुस्थल पर दिन रात चलते हुए मै न तो रुकता हूँ और न थकता हूँ, पर, कभी-कभी मेरे हृदय मे भी यह आकाक्षा उत्पन्न होती है, इस इच्छा की एक अदम्य हिलोर उठती है कि काश मेरे इस ज्वालामय जीवन-पथ पर भी किसी कोने मे कोई हरियाली होती ! मै रुकता फिर भी नही हूँ, मै थकता फिर भी नही हूँ, पर चाहता हूँ कि वहाँ हरियाली होती, बस केवल होती, और कुछ नही।

इला

यह मै तुम्हारे मुँह से आज क्या सुन रही हूँ ?

नवीन

मुझे गलत न समझो इला ! मै अपने सिद्धान्तो पर दृढ हूँ। मै अपने उच्च आदर्शो के पीछे किसी भी क्षण अपने प्राण तक दे सकता हूँ और एक मनुष्य को अपने प्राणो से प्रिय और क्या हो सकता है ? मेरी परीक्षा तो उस दिन होगी, जिस दिन मै इस ससार मे न हूँगा। पर, यदि तुम यह समझो कि मै सामान्य मानव नही, बल्कि महामानव या देव हूँ, तो मेरी कठिन साधना का एक अणु भी तुम अनुभव न कर पाओगी। मेरे हृदय मे पिछले कुछ दिनो से एक इतना प्रबल अन्तर्द्वन्द्व

निरन्तर होता रहता है कि उसे इतनी सफलता से छिपाकर रखना मेरा ही काम है।

इला

अन्तर्द्वन्द्व ? कैसा अन्तर्द्वन्द्व ?

नवीन

अभी सब बताए देता हूँ। वही चिरन्तन अन्तर्द्वन्द्व, जो आदिकाल-से मानव के हृदय मे आदर्श और प्रेम के बीच, साधना और स्नेह के बीच, होता आया है। मेरी जगह यदि कोई और नवयुवक होता, तो अब तक कभी का तुमसे यह प्रस्ताव कर बैठता कि तुम मेरा प्रेम स्वीकार करो, मुझसे विवाह करके मुझे कृतार्थ करो।

इला

आज तुम्हे हो क्या गया है ? तुम ये कैसी बाते कर रहे हो ?

नवीन

मै तुम्हे इतनी गम्भीरता से प्रेम करता हूँ और तुमसे विवाह करना इतनी उत्कटता से चाहता हूँ कि मुझे स्वय आश्चर्य होता है कि मै इतने दिनो से इस प्रचण्ड ज्वाला को हृदय मे छिपाकर रखते हुए भी तुम्हे इसकी किंचिन्मात्र झलक पाने से भी कैसे बचाकर रख सका। आज पहली बार बुझते हुए दीपक की अन्तिम ज्वाला की भाँति इस रहस्य को मै तुमपर इसलिए प्रकट कर देना चाहता हूँ कि तुम यह समझकर मेरी साधना की कठिनता का अनुभव कर सको कि मै एक नितान्त सामान्य मानव हूँ, न तो देव हूँ और न ऋषि। और विश्वास रखो, इला, कि मै इस रहस्य को फिर कभी न तो तुमपर प्रकट करूँगा और न किसी अन्य पर, यहाँ तक कि स्वय अपने आप पर भी नही। इस विषय मे मै अपने मन से भी कभी स्वगत-भाषण तक न करूँगा। हमारी साधना निरन्तर पूर्ववत् चलती रहेगी, हम अपने लक्ष्य से कभी भ्रष्ट न होंगे, अपने पथ से कभी विचलित न होगे। विश्वास रखो इला, हम अब तक जैसे रहते आए है, वैसे ही सदा रहेगे।

इला

हाय, यह तुमने क्या किया ? मुझपर इस भीषण रहस्य को प्रकट क्यो किया ! इसमे तो मेरी धारणाओ का हिमाचल ही धराशायी हो गया। मेरे उच्चादर्शो के सारे स्वप्न अचानक भग हो गए। तुम चाहे जो सोचो, तुम चाहे जो कहो ! मै एक क्षण के लिए भी इस प्रश्न पर तुम्हारे सम्मुख नही झुक सकती। मै अपने व्रत पर दृढ हूँ, मै समर्पण नही कर सकती। मै फिर कहती हूँ कि मै समर्पण नही करूँगी, कदापि न करूँगी, न तो प्रेम को और न विवाह के प्रस्ताव को। तुमने तो मेरी सारी दुनिया ही बदल दी। मेरी तमाम भावनाओ के अकुरो पर वज्रपात कर दिया ! मै रक्त-मास के मानव की भक्त नही हूँ। मेरी आस्था तो उसी मानव पर है, जो विशुद्ध ज्योति पुज हो, जो विद्युत् की भाँति प्रभामय और तेजस्वी हो। मै तो उसीको समर्पण कर सकती हूँ। मै बहुत व्यथित हूँ। मेरा हृदय फटा जा रहा है। तुम मेरे सामने से चले जाओ ! दूर हो जाओ !

नवीन

खिन्न न हो इला, विक्षुब्ध न हो। मै जा रहा हूँ, मै सदा के लिए जा रहा हूँ। कोई उत्तेजना, रोष या पश्चात्ताप लेकर नही। किसी विशेष कार्य के लिए भी नही। मेरे प्रतिदिन के अनेक कार्य ऐसे है, जिनमे चाहे जब ऐसा अवसर आ सकता है कि जाकर फिर लौटने का अवसर न मिले। सभव है, आज के बाद मै फिर तुमसे न मिलूं। पर, एक बात कहे जाता हूँ। तुम मुझे बिलकुल गलत समझी हो। मै मानव भी हूँ और युवक भी हूँ, पर, मै न तो विनोदकुमार हूँ और न गजेन्द्रसिह। मै नवीन हूँ, जो जीवन भर प्रेम की ज्वाला मे दग्ध होने पर भी न तो उसकी आँच किसी पर आने देना चाहता है और न उसके कारण अपने जीवन भर प्रेम और विवाह के बन्धन से मुक्त रहकर जनसेवा करने के व्रत से विचलित होना चाहता है।

इला

इन सब बातों से अब क्या लाभ ? अब तो सब कुछ समाप्त हो गया ! उफ् ! क्या मुझे यह सब भी सुनना था !

नवीन

शान्त हो इला, बस, अब मैं जाता हूँ और यह फिर कहे जाता हूँ कि तुम मुझे बिलकुल गलत समझी हो और इस गलती पर तुम किसी दिन पछताओगी। मैं तो यह भी कह सकता हूँ कि मैंने तुम्हे भी पहचान लिया है।

इला

मुझे क्या पहचान लिया है ?

नवीन

यह कि तुम भी उच्चादर्शप्रवण होते हुए भी सामान्य मानवी हो। यदि तुम आत्म-निरीक्षण करो, तो तुम भी यह अनुभव किए बिना न रहोगी कि तुम्हारे हृदय मे भी मेरे लिए एक अत्यन्त कोमल भाव उत्पन्न हो गया है। मेरे हृदय की भावना तुम्हारे हृदय की अन्तर्निहित भावना-का प्रतिबिम्ब भी हो सकती है। यदि तुम मे नैतिक साहस हो, तो आत्म-गोपन का आवरण हटाकर तुम इसे स्वीकार भी करोगी। पर, इससे मैं तुम्हे गलत नही समझ सकता। तुम भले ही मेरे प्रति सन्देह का अनुभव करो, पर, मैं तुम्हारे प्रति दृढ विश्वास ही को अपने हृदय में बसाए लिए जा रहा हूँ। मुझे इसमे जरा भी सन्देह नही कि तुम अपने प्रेम-को जीवन भर अत्यन्त दृढता से छिपाए रहकर पूर्ववत् लोकसेवा करती रह सकोगी। अपने लक्ष्य-पथ से तुम कभी विचलित न होगी।

[प्रस्थान।]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[नगर मे अनतिदूर एक ग्राम। ग्राम मे एक कुटी। कुटी के सामने की ओर से खुले हुए भाग में गजेन्द्रसिंह और मायादेवी, ग्रामवासी किसानों से मिलती-जुलती वेश-भूषा में। दोनों बातचीत कर रहे हैं।]

गजेन्द्रसिंह

ससार मे आस्तिकता अभी तक निर्मूल नही हुई है, मायादेवी ! यहाँ अभी भक्त भी है और भगवान् भी और भक्तो की उपासना और वन्दना आज भी पूर्ववत् चलती रहती है। जानती हो, आजकल सब से बडा भक्त कौन है, सब से बडा भगवान् कौन और सब से बडी वन्दना कौन-सी है ?

मायादेवी

मै तुम्हारा मतलब नही समझ सकी।

गजेन्द्रसिंह

जरा सुनो ! अभी सब समझ जाओगी ! सब से बडा भक्त है यह गजेन्द्रसिह और सब से बडे भगवान् है इस गॉव के निवासी सीधे-सादे और रूढिवादी किसान। और सब से बडी वन्दना, सब से महत्त्वपूर्ण उपासना कौन-सी है, यह भी बताऊँ !

मायादेवी

सब से बडी वन्दना !

गजेन्द्र

हाँ। सब से बडी वन्दना वह है, जो अपने राम नित्य नियमपूर्वक प्रात.काल की ब्रह्मवेला मे करते है। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तथा नित्यकृत्यों से निवृत्त होकर हम यो लम्बे लेट जाते है [पेट के बल, पैर तथा हाथ लम्बे पसारकर, लेटकर, दण्डवत् प्रणाम का नाट्य

करता है] और हाथ जोडकर यो वन्दना करते है—"हे ग्रामदेवता ! हे किसान-भगवान् ! तुम्हे यह भक्त गजेन्द्रसिह अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से गद्गद होकर, हाथ जोडकर, पुन पुन दण्डवत् प्रणाम करता है ! तुमसे महान् देव इस ससार में और कोई नही है । तुमने मेरी वर्षो-की सब से प्रिय मनोकामना एक ही झटके मे पूरी करा दी । तुम धन्य हो मेरे प्रभु ! तुम न होते, तो मै चिरकुमार ही बना रहता । तुम न होते, तो मायादेवी मुझसे कभी विवाह न करती ! हमारे सुखी विवाहित जीवन के तुम्ही एकमात्र कारण हो ! तुम्हारे रूढिप्रेम और तुम्हारे आग्रह की गर्मी ही ने मायादेवी का कठोर हृदय पिघलाया है !"

माया

तुम्हारा मजाक अब भी तुम्हारा पिण्ड नही छोडता ! अब तो तुम्हे विवाहित जीवन का उत्तरदायित्व अनुभव करना चाहिए । अब तो तुम्हे गभीर बनना चाहिए !

गजेन्द्र

गम्भीर ! अब हम क्यो बनने लगे गम्भीर ! अब तो हम और भी पुरमजाक, और भी खुश-खुर्रम बनेगे ! हमारी बरसो की मुराद बर आई है ! हम और तुम अब स्नेह और सुख के वसन्त मे पति-पत्नी के रूप मे जीवन बिता रहे है । अब हमें गम्भीर बनने की क्या जरूरत है ! हाँ, यदि विवाह के पूर्व तुम यह शर्त लगाती कि दिन-रात गम्भीर रहा करो, तो हम ऐसी मुहर्रमी सूरत बनाते कि उसे देखकर तुम भी दग रह जाती !

माया

अच्छा, अच्छा, बहुत हुआ मजाक ! अब बस करो ! [पार्श्व की ओर देखकर] वह देखो, उपेन्द्रनाथ जी और सुषमादेवी आ रहे है ! उनसे ज़रा गम्भीरता से बातचीत करना !

गजेन्द्र

अच्छी बात है ! ऐसा ही होगा ! गृहस्थी को अच्छी तरह चलाने

का कारगर उपाय यही है कि जब पत्नी किसी बात पर जोर दे, तो पति उसे मान ले और जब पति किसी बात का आग्रह करे, तो पत्नी उसे स्वीकार कर ले। इस छोटे-से मूलमत्र को भूल जाने ही से कई गृहस्थियाँ नष्ट हो जाती हैं। हम तो इसी मूलमत्र की पटरी पर अपनी जिन्दगी की रेलगाडी चला ले जायँगे।

[उपेन्द्रनाथ और सुषमादेवी का प्रवेश]

उपेन्द्रनाथ

नमस्ते गजेन्द्रसिह जी ! नमस्ते मायादेवी !

गजेन्द्रसिंह

आइए उपेन्द्रनाथजी ! आइए सुषमादेवी ! बडी कृपा की !

मायादेवी

आप लोग तो जैसे हम लोगो को भूल ही गए !

उपेन्द्रनाथ

यह बात तो हम लोगो को कहनी चाहिए।

सुषमादेवी

आप लोगो ने चुपचाप विवाह भी कर लिया और हम लोगो को निमंत्रण तक नहीं दिया !

माया

वह क्या कोई गौरव की बात थी, जो उसका ढिंढोरा पीटा जाता। वह तो जनसेवा के मार्ग मे रूढिवाद द्वारा अचानक उत्पन्न कर दी गई एक बाधा, एक लाचारी थी।

उपेन्द्र

और आप लोगो ने यह किसानो के ढग का वेश कब से धारण कर लिया ?

गजेन्द्र

जो कुछ हुआ है, सब अन्नदाता किसानों ही के हुक्म से हुआ है। उन्हीके आग्रह पर हम लोगो को विवाह करना पड़ा और उन्ही की

इच्छानुसार उनके ढग का रहन-सहन अपनाना पडा।

सुषमा

अच्छा, यह बात है !

माया

हम ज्योंही गाँव मे आकर रहे, किसान पुरुष, और पुरुषों से भी अधिक किसान स्त्रियाँ, आग्रह करने लगी कि हम लोगों को विवाह कर लेना चाहिए।

उपेन्द्र

भई वाह, यह जिद भी एक ही रही ! हम लोगो को तो नवीनचन्द्र जी ने विद्यार्थियो के क्षेत्र म काम करने का भार सौपा है। हमारा क्षेत्र तो बुद्धिमान् और आदर्शवादी नवयुवको का क्षेत्र है। वे सब है भी प्राय. अविवाहित। हममे तो कोई आग्रह नही करता कि पहले विवाह कीजिए, फिर अपने क्षेत्र मे कार्य करने देंगे।

गजेन्द्र

अपनी-अपनी किस्मत जो ठहरी ! अच्छा, तो, हमारा हाल सुनिए ! पहले तो अपने राम बडे घबराए, जब एक दिन नवीनचन्द्र जी ने अचानक आज्ञा दी कि हम लोग इस गॉव मे बिलकुल किसानो ही की तरह रहते हुए किसानो की सेवा करे। उनकी आज्ञा मिलते ही मायादेवी भी पीछे पड गई कि फौरन् गॉव मे चलकर कुटी बनाकर किसानो के समान भोजन-वसन और उन्ही के समान रहन-सहन ग्रहण करके उनकी सेवा शुरू कर दी जाय। इनके आग्रह पर फौरन् गॉव मे आकर बसना पड़ा। हफ्ते भर तो इन्होने वह-वह यन्त्रणाएँ दी कि बस जी ही जानता है।

उपेन्द्र

यत्रणाएँ दी !

गजेन्द्र

जी हॉ, मुझसे सब कुछ करवाकर छोडा। कुछ भी बाकी नही

रखा ! गाँव वालों जैसे कपडे पहनवाए, उन्ही जैसा खाना खिलाया। दिन भर किसानों के साथ उन्ही के काम करवाए। हल चलवाया, पशु चराने भेजा, कडे पाथने का काम कराया और क्या-क्या नही कराया ? अपने राम को उन दिनो छटी का दूध याद आ गया। बडी कठिन साधना करनी पडी। पर, कुछ ही दिनो मे अचानक ऐसा चक्र चला कि सारे कष्ट सदा के लिए सह्य हो गए। तमाम तकलीफो मे अपार सुख का अनुभव होने लगा।

सुषमा

वह कैसे ?

गजेन्द्र

वह ऐसे कि एक दिन गाँव की किसी घाघ बुढिया ने यह शगूफा छोड दिया कि ये गजेन्द्र बाबू और मायाबाई आखिर है कौन ? न तो ये भाई-बहन है और न पति-पत्नी ! जवान होते हुए भी ये व्याह क्यो नही करते ? इसका तो हमारे गाँव के लडके-लडकियो पर अच्छा असर न पडेगा। बस, फिर क्या था ! गाँव की भेडिया-धसान मशहूर ही है ! गाँव के सब स्त्री-पुरुष हम लोगो के पीछे ही पड गए कि या तो हम ब्याह कर ले अथवा गाँव से अपना डेरा-डडा उठाकर चले जायँ।

उपेन्द्र

अच्छा, बिलकुल नोटिस ही दे दिया !

गजेन्द्रसिंह

जी हाँ ! मगर, मैने तो उन लोगो से साफ कह दिया कि मै इस मामले मे कुछ नही कर सकता, वे मायादेवी से कहे। इसपर वे सब मायादेवी के सर हो गए। तग आकर एक दिन, मायादेवी ने कहा कि किसानों की सेवा तो सर्वस्व का बलिदान करके भी करनी ही पडेगी, आजीवन अविवाहित रहने के सिद्धात को छोडकर भी। इसपर मेरा हृदय हर्ष के मारे बल्लियो उछलने लगा, पर, फिर कोई विचार परि-

वर्तन न हो जाय, इस आशका से मै सारे हर्ष को फौरन् अन्दर ही अन्दर बिलकुल पी गया और मैने एकदम सूखा-सा मुँह बनाकर मायादेवी-से कह दिया कि जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही किया जायगा। बस, फिर क्या था, शीघ्र ही हम लोगो का आपस मे विवाह हो गया।

सुषमा

आप लोगो के विवाह की खबर सुनकर हम आप लोगो को उलहना देने आए थे कि आप लोगो ने हमें विवाह मे निमन्त्रित क्यो नही किया। उसके लिए तो आप लोगो ने कारण बता ही दिया। हमारे आने का एक उद्देश्य और भी था। हम लोग आप लोगो को बधाई देने भी आए थे। लीजिए, हमारी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

माया

बधाई देना तो शर्मिन्दा करना है सुषमा-बहन! सच तो यह है कि हम लोग अपने जीवन-व्रत से च्युत हुए है। हमें इसके लिए आप लोगो की भर्त्सना मिलनी चाहिए। हम इस गलती के लिए आप लोगो से क्षमा चाहते है।

सुषमा

इसमे लज्जा और क्षमा की क्या बात है? विकट परिस्थिति मे पडकर मनुष्य को इच्छा के विरुद्ध भी आचरण करना पड़ता है। और फिर, अन्तत: हम लोग है तो मानव ही न! अच्छा, अब मै तो आप लोगो की आज्ञा चाहती हूँ, मुझे इलादेवी से मिलने जाना है। उपेन्द्र-नाथजी आप लोगो के किसान-आश्रम के कार्य को विस्तार से देखेगे। अच्छा, नमस्ते!

गजेन्द्र

नमस्ते जी!

माया

नमस्ते सुषमा-बहन!

[सुषमा का प्रस्थान]

उपेन्द्रनाथ

खैर, ये तो हँसी-खुशी और आनन्द-विनोद की बाते हुई। अब ज़रा हम लोगो को गम्भीरता से अपने कार्य के बारे मे भी विचार करना चाहिए। हम लोग इस समय बडी विकट परिस्थितियो मे है। आजीवन अविवाहित रहकर जनसेवा करने के हम लोगो के अनिवार्य व्रत की ओर से हमारे बहुत-से साथी उदासीन होते जा रहे है। गम्भीरता से सोचने पर अब हम यह अनुभव करने लगे है कि हमने अपने साथी कार्यकर्ताओ के लिए इस प्रतिबन्ध को अनिवार्य बनाकर भूल की।

माया

क्या आप भी यह अनुभव करने लगे है ?

उपेन्द्र

हाँ! नौजवान साथी उस समय तक तो इस प्रतिबन्ध को महत्त्व देते रहते है, जबतक उनकी उम्र नौजवानी के प्रथम चरण तक सीमित रहती है। यौवन के द्वितीय चरण मे प्रवेश करते ही, वे कोई न कोई कारण बताकर इस प्रतिबन्ध को तोड़ देते है। अतः, अब हम सोचते है कि इस प्रतिबन्ध को स्पष्टतया और वैधानिक रूप मे समाप्त कर दिया जाय ! नवीनचन्द्र जी मज़दूरों की हडताल के सम्बन्ध मे जिले के सदर मुकाम की ओर चले गए है; ज्यों ही वह वहाँ से लौट आएँगे, त्यो ही मैं उनके सामने यह प्रस्ताव रखूँगा कि इस बन्धन से अपने साथियो को मुक्ति दे दें। बहुत सोच-विचार के बाद मै इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ। विवाह का प्रश्न बिलकुल व्यक्तिगत प्रश्न है और इसके सम्बन्ध मे जो प्रतिबन्ध रखा जाय, उसका पालन ऐच्छिक होना चाहिए, अनिवार्य नही।

गजेन्द्र

मै भी आपसे सहमत हूँ। जो लोग आजीवन अविवाहित तथा प्रेम-के प्रपंचों से परे रहकर जनसेवा करते रह सके, उन्हे हम महामानव

समझकर सम्मानित करते रहे, किन्तु, जो सामान्य मानवो की भाँति विवाह कर ले, उन्हे हम असम्मान या उपेक्षा की दृष्टि से न देखे। उन्हे भी हम अपना विश्वासपात्र साथी ही समझते रहे।

मा या

मेरी राय मे, आजीवन अविवाहित रहकर जनसेवा करने के उच्च आदर्श को हमे पहले की भाँति ही अपना जीवनव्रत समझना चाहिए। यह दूसरी बात है कि जनसेवा के मार्ग पर चलने ही के लिए, किसी के लिए, विवाह करने की लाचारी अनिवार्य हो जाय। उस व्यक्ति को, उसकी विशेष अवस्था के कारण, क्षमा कर दिया जाना चाहिए।

गजेन्द्र

खैर, सारी बाते नवीनचन्द्रजी के लौटने ही पर उनके समक्ष विस्तार-से रखी जानी चाहिए। अभी उन पर अधिक चर्चा अनावश्यक है।

उपेन्द्र

कुछ बाते तो बिलकुल बुनियादी है। हमारे साथियो मे से बहुत-से समझदार और पुराने कार्यकर्ता अब यह अनुभव करने लगे है कि जनसेवा के मार्ग पर हम लोगो का सगठन केवल भावनाएँ लेकर चल पडा। हमारे पास कोई वैज्ञानिक योजना या जीवन-दर्शन नही था। समाजव्यवस्था की कोई स्पष्ट तसवीर हमारी आँखो मे नही थी। हमारी भावुकता केवल विवाह और प्रेम से बचे रहने के व्रत ही को सर्वाधिक महत्त्व देने की ओर पिल पडी। सुयोजित नीति और वैज्ञानिक चिन्तन तथा तदनुकूल कार्यक्रम बनाकर चलने को हमने उचित महत्त्व नही दिया। इसीसे हम असफल हो रहे है। अच्छा, यह तो बताइए कि आप लोगो का किसान-सेवा का कार्य कैसा चल रहा है।

गजेन्द्र

बहुत अच्छा! किसान स्त्री-पुरुष उन्ही जनसेवको पर आन्तरिक विश्वास प्रकट कर सकते है, जो बिलकुल उन्हीके जीवन को अपना जीवन बनाकर उनमे घुल-मिलकर रहे। उनकी सेवा करते हुए भी उन-

पर अपना अहसान न जतावे। हम बिलकुल इसी तरह रहकर नवीनचन्द्रजी के बताए हुए तरीको ही से किसानो की सेवा के कार्य कर रहे हैं और उनके जीवन को अपनी अभीष्ट दिशा की ओर प्रेरित करने मे प्रयत्नशील है।

उपेन्द्र

तब तो आप लोग बडा प्रशसनीय कार्य कर रहे है।

माया

हम लोगो ने किसानदेवता को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है उपेन्द्रनाथजी ! हमारा अपना आपा अब कुछ भी शेष नही रहा है। हमारे जीवन की साधना यही है कि हम किसानो की सेवा करते-करते मौन भाव से उसी तरह समाप्त हो जायँ, जिस तरह एक छोटा-सा दीपक धीरे-धीरे जलते-जलते बुझ जाता है।

[नेपथ्य से कृषक-बालिकाओं के सामूहिक गान तथा सम्मिलित नृत्य की ध्वनि आती है।]

गजेन्द्र

मालूम होता है, चौपाल के निकटस्थ मच पर गाँव का साप्ताहिक सास्कृतिक कार्यक्रम प्रारभ हो गया। चलिए, हम लोग भी चलकर उसमे शामिल हों। किसानो का सास्कृतिक स्तर उठाने का यत्न भी हम कर रहे है।

[सब का प्रस्थान। नेपथ्य से समवेत-नृत्य के साथ निम्नलिखित समूह-गीत की ध्वनि आती है]

गान

गाएँ खुशियों के गीत गाँववालियाँ !
प्यारे खेतो मे छाई हरियालियाँ !
मिल-जुल हमने भूमि सँवारी,
तन-मन से आरती उतारी,
सोने से प्रिय फसल हमारी !

इसकी करे रखवालियाँ !
प्यारे खेतों मे छाई हरियालियाँ !
खून-पसीने से सिचवाई !
सेवा कैसी कठिन कराई !
है किसान की खरी कमाई
अन्न-भरी ये बालियाँ !
प्यारे खेतो मे छाई हरियालियाँ !

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[शान्तिस्वरूप के मकान का बरामदा। इलादेवी और सुषमादेवी बेंत के मूढ़ों पर बैठी हुई बातें कर रही हैं।]

सुषमादेवी

इला बहन, भीषण तूफान मे छोटे-मोटे वृक्षो को टूट-टूटकर गिरते देखकर भी जो महान् वटवृक्ष दृढता और साहस के साथ अन्त तक खडा रहता है, वह विश्व की श्रद्धा का अधिकारी होता है। तुम्हारी भी इस समय ऐसी ही दशा है। एक-एककर तुम्हारे अनेक साथी और सहयोगी अपना व्रत-भग करते जा रहे है, पर,तुम हो कि आज तक अपने आजीवन अविवाहित रहकर जनसेवा करने के व्रत पर दृढ हो। तुम और नवीनचन्द्र जी ही आज हम लोगो के जीवन-पथ के ध्रुव नक्षत्र बने हुए है। तुम दोनो का वारम्वार श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करने को जी चाहता है।

इलादेवी

बन्द करो यह प्रशसा, सुषमा बहन! तुम्हे मालूम नही कि मेरा सिद्धान्तो का महान् सुख-स्वप्न भंग हो गया है। मेरा आदर्श हिमाचल धराशायी हो गया है। मै बड़ी खिन्न हूँ!

सुषमा

यह मै क्या सुन रही हूँ, बहन! यह क्या बात है?

इलादेवी

ठीक सुन रही हो सुषमा! वस्तुस्थिति यही है। उपेन्द्रनाथ एक सच्चरित्र और योग्य युवक है। तुमने उन्हे अभी तक बहुत निराश किया। अब अपनी ज़िद छोडकर उनसे विवाह कर लो। जिनके पीछे तुम लोग कठोर साधना का जीवन बिताने को विवश हो रहे हो, उन्होने जब अपना व्रत छोड़ दिया, तब तुम्हीको क्यो आत्मपीडन की आग मे जलना चाहिए।

सुषमा

जीवन-व्रत छोड दिया ? किसने ? आज तुम्हे हो क्या गया है इला ! ये कैसी बाते कर रही हो ?

इला

यही सत्य है, सुषमा ! कटु से कटु सत्य को सुनने और सहन करने-की शक्ति अपने अन्दर उत्पन्न करो। अब तक तुमने जो देखा और सुना था, वह मिथ्या था ! तुमसे बढकर मेरी प्रिय सहेली कौन हो सकती है ! मै तुम्हे सब से अधिक विश्वासपात्र समझती हूँ। इसीलिए, आज तुम्हारे सामने अपने हृदय का सबसे गुप्त रहस्य खोलना चाहती हूँ !

सुषमा

यह मेरा अहोभाग्य है कि तुम मुझपर इतना विश्वास करती हो। मै तुम्हे आश्वासन देती हूँ बहन, कि मै कभी तुम्हारा विश्वास भग नही करूँगी। तुम मुझसे अपने अन्तरतम की सब से अधिक गोपनीय बात कह सकती हो।

इला

तो सुनो बहन, उस दिन अचानक नवीनचन्द्र जी के मुँह से यह निकल पड़ा कि वह मुझे बहुत दिनो से प्रेम की दृष्टि से देखते आ रहे थे और मुझसे विवाह भी करना चाहते थे, किन्तु, उच्चादर्शो की सत्प्रेरणा से, साधना और स्नेह के बीच चल रहे इस पुराने अन्तर्द्वन्द्व को निरन्तर दबाते आए थे और उन्होने कभी किसीसे इसकी चर्चा नही की थी। जब इसपर मैने उनकी कुछ भर्त्सना-सी की, तब वह यह कहकर चले गए कि वह कभी मुझे अपना मुँह न दिखाएँगे। बाद मे मुझे पता चला कि वह जिले के सदर मुकाम पर मजदूरो की हड़ताल का नेतृत्व करने चले गए।

सुषमा

यह तो तुमने बड़ी विचित्र बात सुनाई, इला !

इला

इससे भी भयकर बात यह है कि उन्होने चलते-चलते यह भी कहा कि उनका अनुमान है कि शायद मैं भी उन्हे बहुत दिनो से प्रेम करती आ रही हूँ और यह बात मैंने उनसे भी छिपाई है, सहेलियो से भी छिपाई है और अपने-आप से भी छिपाई है। इससे तो मेरे हृदय पर ऐसा गहरा आघात हुआ कि आज जीवन मे पहली बार मैं सघर्ष के मोर्चे पर उनके साथ नही हूँ। वह वहाँ अकेले लड रहे है और मै यहाँ अकेली अपने हृदय के अन्त्रतम तक को कुरेद-कुरेदकर देख रही हूँ कि कही उनका अनुमान सही तो नही है। कही मै अपने आपको, नवीनचन्द्र जी को और ससार को धोखा तो नही देती आ रही हूँ।

सुषमा

तुम्हारे इस निर्मम आत्मनिरीक्षण का क्या परिणाम निकला ?

इला

अभी तक तो मेरे हृदय का यह आन्तरिक रहस्य अप्रकट ही है। मालूम नही, शूल बनकर किस गहराई मे छिपा हुआ है। अभी तक तो इस अविरत कुरेदन से मेरा हृदय लहूलुहान ही हो रहा है। अभी तक तो कुछ भी हाथ नही आया है। सभव है, किसी प्रबलतर आघात की प्रेरणा से कभी कोई गोप्यतम रहस्य हृदय की अतल गहराई से ऊपर उभर आ सके।

सुषमा

तुम्हारे हृदय की इस व्यथा से मेरा हृदय भी बड़ा खिन्न है। जब तुम दोनो का यह हाल है, तब हम लोग तो अत्यन्त दुर्बल मानवीय प्राणी है।

इला

अविरत और गभीर आत्ममथन से मै इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि मानव-हृदय-सागर से भी गंभीर और वनराजि से भी दुर्गम है। सारे ससार को ज्ञान-विज्ञान तथा उच्चादर्शों का उपदेश देने वाले महापुरुषों-

को भी अपने हृदय के आतरिक रहस्यो तथा अपनी दुर्बलताओ का अणु-मात्र भी पता नही रहता ! हम जैसे सामान्य मानवो की तो गिनती ही क्या है ! प्रकट जगत् के सम्बन्ध मे मनीषियो ने जितने अन्वेषण किए है, अन्तर्जगत् के सम्बन्ध मे उनसे कई गुने अधिक अन्वेषणो की आवश्यकता है।

सुषमा

मै अपने दुर्भाग्य की बात सोच रही हूँ, बहन ! कितना बडा दुर्भाग्य है हम लोगो का ! जनसेवा का एक छोटा-सा आयोजन नवीनचन्द्र जी के तथा तुम्हारे नेतृत्व मे हो रहा था। हमारी छोटी-सी साधना कैसी अविरत गति से चल रही थी। हमारी जरा-सी भूल ही से हमारी जीवन-नौका भँवर मे पड गई।

इला

तुम्हारा अभिप्राय किस भूल से है ?

सुषमा

हम लोगो ने मानव जीवन और मानव हृदय का सर्वागीण और सम्पूर्ण अध्ययन किए बिना ही अपने को ज्ञानी समझ लिया। जीवन-की सम्पूर्णता और सामजस्य को छोडकर हम एकागी प्रगति की ओर पिल पडे। हमने अधिक महत्त्वपूर्ण विषयो को अधिक महत्त्वपूर्ण और कम महत्त्वपूर्ण विषयो को कम महत्त्वपूर्ण नही समझा। हमने विवाह और प्रेम को व्यक्तिगत प्रश्न न रहने देकर अपने सगठन के अनिवार्य प्रतिबन्धो मे इनके निषेध का समावेश कर दिया।

इला

हमारा खयाल था कि यदि हम ऐसा न करेगे, तो हमारा सगठन कमज़ोर पड जायगा।

सुषमा

इन विषयो के प्रति मानव की स्वाभाविक दुर्बलता को हमने सहानुभूति और दया की दृष्टि से न देखकर घृणा और क्रोध की दृष्टि से

देखा। योग्य से योग्य और वीर से वीर साथी या साथिन को हमने केवल इसीलिए अपने से अलग और हेय समझा कि वह आजीवन प्रेम और विवाह से बचकर रहने के हमारे व्रत के पालन के मार्ग पर हमारी ही तरह दृढ कदमो से चलने मे असमर्थ था। हमारा यही दभ, यही अहकार और यही एकागी दुराग्रह हमे खा गया, हमारे आन्दोलन को नष्ट कर गया, हमारी साधना की जड उखाड गया। लम्बे अनुभव-के बाद मै आज इस परिणाम पर पहुँची हूँ।

इला

इन बातो से अब क्या लाभ हो सकता है ?

सुषमा

अभी समय है कि हम अपने-आपको और अपने आन्दोलन को बचावे। उसे सकीर्ण फाटकबन्दी के घेरे मे मुक्त करे। उसकी उच्चता और गभीरता को सीमितता के बदले वितृस्तता से सहयोग करने दे। उच्चादर्शवाद को निरी भावुकता से नही, उच्च बौद्धिकता से मिलने दे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपने आन्दोलन का पुनर्गठन करे। जो लोग आजीवन अविवाहित तथा प्रेममुक्त रहकर जनसेवा करते रह सके, उन्हे हम आदर की दृष्टि से देखे, किन्तु, इस व्रत को अपने सगठन मे सर्वोच्च और अनिवार्य स्थान न दे। इसे गौण और व्यक्तिगत महत्ता-का प्रश्न बनाकर छोड दे। जनता के सर्वागीण विकास की व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक योजना बनाकर उसके लिए कार्य करने को सबके लिए सुकर बनाकर, तर्कसगत और बुद्धिपुरस्सर तरीके से आगे बढे। हमारा सुनिश्चित और प्रगतिशील जीवन-दर्शन हो।

इला

तुम्हारी बाते विचारणीय है सुषमा ' ये हमारी अब तक की कार्यप्रणाली मे आमूल परिवर्तन की माँग करती है। हम लोगो को अवश्य इन बातो पर गभीरता से विचार करना चाहिए और यदि हम गभीर चिन्तन के फलस्वरूप इस परिणाम पर पहुँचे कि हम गलती पर

थे, तो हमे अपनी पिछली भूलो को निस्संकोच होकर स्वीकार कर लेना चाहिए और उन्हे सुधारकर आगे कार्य करना चाहिए । मै तुम्हे विश्वास दिलाती हूँ बहन, कि जिस क्षण मुझे अपनी भूल मालूम होगी, उसी क्षण मै उसे स्वीकार करके सुधार लूँगी और आवश्यक होने-पर अपने अब तक के जीवनक्रम मे भी मौलिक परिवर्तन कर लूँगी। किन्तु, इस क्षण तक तो मै अपने सिद्धान्त पर दृढ हूँ, मै प्रेम और विवाह के मामले मे किसी को अपना समर्पण नही कर सकती।

सुषमा

मै तो फिर यही कहूँगी कि मै हाल की अनेक घटनाओ से इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि मुख्य कार्य जनसेवा है । यदि प्रेम और विवाह से किसी तरुण या तरुणी की जनसेवा की भावना और कार्य मे कोई बाधा नही पडती, तो उसे इन दोनों व्यक्तिगत प्रश्नो पर इच्छानुसार निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए । हाँ, गैरजिम्मेदार प्रेम और केवल वासनारत विवाह को अवश्य निरुत्साहित किया जाना चाहिए । केवल भावुकतावश प्रेम और विवाह न करने की जिद को अधिक महत्त्व न दिया जाना चाहिए । मै तुमसे यह एकान्त अनुरोध करती हूँ कि नवीन जी के लौटते ही तुम उनने साहसपूर्वक विवाह कर लेना ।

[पोस्टमैन आकर डाक का बंडल देता है । उसमे से एक दैनिक समाचार-पत्र खोलकर इलादेवी पढने लगती है। सुषमादेवी एक साप्ताहिक पत्र लेकर उसे पढने मे तन्मय हो जाती है। अचानक उत्तेजित होकर इलादेवी पत्र पटक देती है।]

इला

गजब हो गया सुषमा ! हडताली मजदूरो के जुलूस का नेतृत्व करते हुए नवीन जी पुलिस की गोली से मारे गए !

सुषमा

हाय, यह क्या हुआ बहन !

इला

मेरा हृदय इस आकस्मिक और प्रबल आघात से चूर-चूर हो गया है, सुषमा ! अब उसमे कुछ भी शेष नही रहा। सब कुछ बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया। मेरा दभ, मेरा अभिमान, मेरे आदर्श, मेरे सिद्धान्त, सब धूल मे मिल गए। मुझे अनुभव हो रहा है कि मै एक अत्यन्त दुर्बल मानवी से अधिक कुछ नही हूँ। मेरी भूल मुझे मालूम हो गई है। इस भीषणतम आघात से मेरे हृदय के अन्तर्तम मे छिपा हुआ गूढतम रहस्य एकदम ठोकर खाकर अचानक ऊपर उभर आया है। मै आज अपनी दुर्बलता स्पष्ट रूप से अनुभव कर रही हूँ।

सुषमा

दुर्बलता ? तुममे दुर्बलता ?

इला

हाँ, मै आज अपनी दुर्बलता, अपना समर्पण उच्चस्वर से घोषित करना चाहती हूँ। मै आज कहना चाहती हूँ कि मै प्रेम के आगे समर्पण करती हूँ, मै विवाह के आगे समर्पण करती हूँ। मै नवीनचन्द्र के आगे समर्पण करती हूँ, जो आज एक नाम-मात्र रह गया है जो आज एक ज्योतिः पुज है, आदर्शो का प्रतीक है, जिसनेमानव होने के नाते सदैव अन्तर्द्वन्द्व अनुभव किया। किन्तु, एक आदर्शवादी होने के नाते अपनी दुर्बलताओ के आगे कभी अपना समर्पण नही किया ! किन्तु, मेरा तो सारा जीवन ही आत्मवचना और दभ का जीवन था।

सुषमा

आत्मवचना और दभ ! यह नही हो सकता इला ! ऐसा न कहो !

इला

ऐसा ही है सुषमा ! वह मेरी कितनी बडी मूर्खता थी कि मैने अपनी दुर्बलता को भूलकर नवीनचन्द्र के प्रथम और अतिम निष्कपट आत्मप्रकाशनमात्र पर उनकी भर्त्सना की। आज कटुतम सत्य सामने

आ रहा है। मैं आज उनसे बहुत दुर्बल सिद्ध हो रही हूँ। मैं अब अपनी दुर्बलता न छिपाऊँगी। मैं आज निस्सकोच होकर कहना चाहती हूँ कि मै शहीद नवीनचन्द्र की विधवा हूँ। मै आज प्रेम को पुनः पुनः अपना समर्पण घोषित करती हूँ, विवाह को अपना समर्पण घोषित करती हूँ, सम्पूर्ण और बिना-शर्त समर्पण! और इस समर्पण पर मैं आज गौरव अनुभव कर रही हूँ!

सुषमा

मानव हृदय की जय हो! उसकी दुर्बलताओ की जय हो, किन्तु, उसकी साधना भी अक्षय बनी रहे, वह भी अजर रहे, वह भी अमर रहे। दुर्बलता यदि सत्य है, तो उससे ऊपर उठना भी महासत्य है। अपने को सँभालो इला! इस प्रकार अधीर और विक्षुब्ध होने से काम न चलेगा। विकट मे विकट परिस्थिति का मुकाबिला करने ही मे मानवीय साहस की परीक्षा होती है। शान्त होकर अगला कार्यक्रम निर्धारित करो।

इला

कार्यक्रम? मेरा कार्यक्रम तो सुनिश्चित है। मैं इसी डाकगाडी से जाकर उस मोर्चे पर अपने को लगा दूँगी, जिस पर नवीनजी शहीद हुए है! तुम सब लोग यहाँ अपने-अपने क्षेत्रों मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण-से निश्चित योजना बनाकर कार्य करते रहना।

[पटाक्षेप]

[समाप्त]